॥ ओ३म् ॥



# शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद

जोकि

## आर्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद

और

### जैनधर्म वालों से

श्रीमती आर्य्यप्रतिनिधिसभा पश्चिमोत्तर

और

अवधदेश की आज्ञानुसार हुआ.

---

वैदिक यन्त्रालय अजमेर

में

मुद्रित हुआ.

सम्वत् २०१५ सन् १९५८

षष्ठावृत्ति २०००

मूल्य प्रति पुस्तक
४० नये पैसे

# वैदिक पुस्तकालय के पुस्तकों की सूची

| | रु. न.पै. |
|---|---|
| ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका मूल्य | २-५० |
| " केवल संस्कृत | १-०० |
| अष्टाध्यायी मूल | ०-६५ |
| अष्टाध्यायी भाष्य पहिला खण्ड | ५-०० |
| " दूसरा खण्ड | ५-०० |
| पंचमहायज्ञविधि | ०-२० |
| संस्कृतवाक्यप्रबोध | ०-२५ |
| व्यवहारभानु | ०-२५ |
| भ्रमोच्छेदन | ०-२० |
| अनुभ्रमोच्छेदन | ०-१० |
| सत्यधर्मविचार (मेला चांदापुर) | ०-२५ |
| आर्योद्देश्यरत्नमाला नागरी | ०-०५ |
| " मराठी | |
| " अंग्रेजी | ०-१० |
| गोकरुणानिधि बड़ा आकार | ०-२० |
| " छोटा आकार | ०-१० |
| स्वामीनारायणमतखण्डन | ०-२५ |
| सत्यार्थप्रकाश सजिल्द बढ़िया | २-२५ |
| सत्यार्थप्रकाश अजिल्द बढ़िया | १-५० |
| सत्यार्थप्रकाश " सादा | १-१५ |
| आर्याभिविनय गुटका | ०-४० |
| " मोटे अक्षरों की | ०-७५ |
| संस्कारविधि सजिल्द बढ़िया | १-५० |
| " अजिल्द बढ़िया | १-०० |
| " " सादा | ०-८५ |

| | रु. नपै. |
|---|---|
| विवाहपद्धति | ०-५० |
| शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद | ०-४० |
| शास्त्रार्थ काशी | ०-२० |
| वेदविरुद्धमतखण्डन | ०-३५ |
| वेदान्तध्वान्तनिवारण नागरी | ०-१५ |
| " अंग्रेज़ी | ०-१५ |
| भ्रान्तिनिवारण | ०-३५ |
| स्वीकार पत्र | ०-०४ |
| स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश नागरी | ०-०५ |
| " अंग्रेज़ी | |
| ऋग्वेदसंहिता सजिल्द | १०-०० |
| अथर्ववेदसंहिता सजिल्द | ६-०० |
| यजुर्वेदसंहिता सजिल्द | ४-०० |
| यजुर्वेदमूल गुटका | २-०० |
| सामवेद संहिता सजिल्द | २-०० |
| चारों वेदों की अनुक्रमणिका | २-५० |
| छान्दोग्योपनिषद् भाष्य | १०-०० |
| नित्यकर्मविधि | ०-०६ |
| हवनमन्त्राः साधारण | ०-०५ |
| हवनमन्त्राः बढ़िया | ०-१० |

Life of Swami Dayanand Saraswati ( English ) by Har Bilas Sarda Rs. 12-00

Dayanand Commemoration Volume ( English ) superior Rs. 10-00

Do-antique paper Rs. 5-00

नोटः—डाकमहसूल सब का मूल्य से अलग होगा। वेदभाष्य, वेदाङ्गप्रकाश एवं अन्य पुस्तकों के लिये सूचीपत्र देखिये या पत्र लिखिये।

प्रबन्धकर्त्ता—वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।

ओ३म्

# भूमिका

उस परब्रह्म परमात्मा को अनेकशः धन्यवाद देना चाहिये, जिसकी प्रेरणा और परमकृपा से सब मनुष्य अपने २ कर्त्तव्यधर्मों में प्रवृत्त होते हैं। उस परमात्मा ने अपनी परमदयालुता से सब प्राणियों के हितार्थ उस सर्वोत्तम विद्या का उपदेश किया कि जिससे संसार और परमार्थ का सुख सिद्ध हो और परमेश्वर वही हो सकता है, जिसके ऊपर कोई न हो और उसकी आज्ञा भी सब के लिये एकसी होनी चाहिये। यदि किसी समुदाय को अन्य उपदेश दे तथा किसी को भिन्न आज्ञा देवे तो समझिये कि उन दो समुदायों में विरोध करानेवाला ईश्वर ही हो जावे, फिर ऐसे को ईश्वर मानना सिद्ध न हो सकेगा। इसलिये ईश्वर वही है जो सब के लिये एक हो और उसका उपदेश वा आज्ञा भी सब के लिये एकसी होवे।

प्रयोजन यह है कि संसार में परस्पर विरुद्ध अनेक मत जो प्रवृत्त हैं उन सब का मूल ईश्वर नहीं है किन्तु मनुष्य लोगों की ओर से हैं। इन मतों में जो २ बातें सब की एकसी मिलती हैं, वे सब ईश्वरीय विद्या वेद से वहां २ गई हैं। जैसे ईश्वर को प्रायः सभी मानते हैं और बहुधा ईश्वर के गुण कर्म स्वभावों को भी एक प्रकार से मानते हैं, वे सब ठीक हैं और जो २ ईश्वर विषय में भी परस्पर विरुद्ध गुणादि मानते हैं, वे सब बीच के बनावटी हैं। जो लोग नास्तिक समझे जाते हैं वे भी किसी सिद्ध पुरुष को सर्वज्ञादि गुणविशिष्ट अपना इष्टदेव मानते हैं पर उसको अनादि सनातनसिद्ध सर्वशक्तिमान् सृष्टिकर्त्ता नहीं मानते। इस मन्तव्य में यह विरोध आता है

कि जो अनादि न होगा और बीच में सिद्ध हो जायगा तो वह अपने उत्पन्न होने से पहिले का हाल नहीं जान सकता, क्योंकि पिता के जन्म का दर्शन पुत्र को होना कदापि सम्भव नहीं है। जब ऐसा है तो उसको सर्वज्ञ मानना कदापि ठीक नहीं है।

इस अनेक प्रकार के मतान्तर का फैलना मनुष्यों की अविद्या से होता है पर इस सृष्टि में जो २ सर्वहितकारी विद्वान् होते हैं वे प्रायः यही यत्न करते हैं कि ईश्वरीय व्यवस्थानुसार सब का मन्तव्य ठीक २ हो जावे, परस्पर का वैर विरोध मिटकर शुद्ध वैदिकधर्म की सर्वत्र प्रवृत्ति होवे। इसी के अनुसार श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीजी महाराज ने भी प्रयत्न किया कि सब मतों का वैर विरोध मिटा के एक वैदिकमत को सब मानें, पर मतवादी लोग ऐसे पक्षपात में ग्रस्त हो रहे हैं कि आर्य लोग आंख से देखते हैं तो हम नाक से देखने लगें।

जब से श्रीमदुक्त स्वामीजी ने वैदिक आर्यधर्म की उत्तमता का उपदेश किया है तब से अनेक मतवादियों ने ( अपनी बनावटी लीला को कटते देखकर ) जहां तहां शास्त्रार्थ करने का प्रारम्भ किया। परन्तु वे लोग शास्त्रार्थ करने में यदि विचारपूर्वक पक्षपात छोड़ के केवल सत्यासत्य के निर्णय के लिये प्रवृत्त हों, तब तो अवश्य अच्छा फल होवे, परन्तु उन लोगों की दृष्टि यह रहती है कि हमारे पक्ष की मूर्खमण्डली ( जिससे हमारा सब धनादि का काम निकलता है ) गड़बड़ा कर हमारे फन्दे से न निकल जावे, इसलिये शास्त्रार्थ का हल्ला करके अपना विजय सब को प्रकट कर देवेंगे।

आजकल अनेक स्थलों में शास्त्रार्थ होते हैं, पर उनसे ऐसा कोई पूर्ण लाभ नहीं होता कि जो अनेक सत्पुरुषों को सत्यासत्य मालूम हो जावे, तथापि बुद्धिमान् लोग उस विवाद में यथोचित बलाबल समझ ही लेते हैं, इससे वैदिकधर्म की उन्नति शनैः २ होती ही जाती है॥

* ओ३म् *

# शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद

ज़िला आगरा में एक फ़ीरोज़ाबाद नामक कसबा है। वहां जैनियों का तीर्थ है। प्रति वर्ष चैत्र में मेला होता है। यह प्रसिद्ध है कि जिन नगरों में जैनी आदि की पोपलीला के मुख्यस्थान हैं, वहां आर्यसमाज की उन्नति वा स्थिति होना कठिन होता है। इसी के अनुसार नगर फ़ीरोज़ाबाद में भी आर्यसमाज का आरम्भ होना जैनियों को महा अनिष्टकारी हुआ। उन्होंने समाज तोड़ने के कई एक उपाय किये। दो एक वार समाज में अपना आदमी भेजा कि हम मतविषय में शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। समाज से पत्र द्वारा उत्तर दिया गया कि हम भी शास्त्रार्थ करने को कटिबद्ध हैं।

इस प्रकार की बातें आर्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद और उस नगर के जैनियों में हो ही रही थीं कि इतने में सनातन आर्य्यधर्मोपदेशक श्री स्वामी भास्करानन्द सरस्वतीजी सं० १९४४ फाल्गुन मास में इस फ़ीरोज़ाबाद नगर में पधारे और सनातनधर्म की वृद्धि पर व्याख्यान दिया। इस पर इसी उक्त नगर के रईस जैनधर्मावलम्बी सेठ फूलचन्दजी ने कहा कि मतविषय पर वार्त्ता होनी चाहिये। जिसका मत ठीक और सनातन निकले, द्वितीय पक्षवाला उसी का ग्रहण करे। स्वामी भास्करानन्दजी के साथ सेठ फूलचन्दजी ने और उक्त स्वामीजी ने परस्पर प्रतिज्ञा की कि जिसका पक्ष गिर जावे, वह द्वितीय पक्ष को स्वीकार करे। तव स्वामी भास्करानन्दजी ने कहा कि तुम्हारी ओर से जो कोई शास्त्रार्थ करने वाला हो, उसको बुलाओ। इस पर सेठ फूलचन्दजी ने पं० पन्नालाल

जैनधर्मों को बुलाया। वे किसी विशेष कारण से न आये। तब यह बात निश्चित हुई कि प्रथम चैत्रसुदि ३ से ८ तक मतविषय पर आर्य और जैनियों का शास्त्रार्थ हो।

इस बात का लेख भी समाचारपत्रों में छप गया था और यह बात सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में प्रकट होगई। दोनों पक्षवालों ने अपने २ पक्ष के पण्डितों को बुलाना प्रारंभ किया। आर्यों की ओर से शास्त्रार्थ करनेवाले पण्डित चैत्र सुदि द्वितीया तक आगए, परन्तु जैनपक्ष के पण्डित द्वितीया तक नहीं आये। आर्यों की ओर से द्वितीया के दिन जब पण्डित लोग आगये, तब सर्वसम्मति के अनुसार पं० गंगाधरजी उपदेशक आर्यसमाज जसवन्तनगर ने सेठ फूलचन्दजी से जा कर कहा कि शास्त्रार्थ कल तृतीया से प्रारम्भ होना चाहिये, जैसा कि सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुका है। इसलिये (पहिले से) आज ही शास्त्रार्थ के नियम और विषय नियत हो जाने चाहियें, जिससे शास्त्रार्थ होते समय कालात्यय न हो। इस पर उक्त सेठजी ने उत्तर दिया कि हमारे पण्डित लोग तृतीया को आजावेंगे, उसी समय सब नियमादि हो जावेंगे।

जब जैन पण्डित द्वितीया की रात को आगये, तो उसी समय में समाज के मन्त्री और उक्त पं० गंगाधरजी ने फिर जाकर सेठजी से कहा कि शास्त्रार्थ के नियम बंध जाने चाहियें तथा प्रबन्धकर्त्ता और सभापति भी नियत होजाने चाहियें, जिससे शास्त्रार्थ के समय में किसी प्रकार की गड़बड़ न हो। तब उन्होंने यह कहा कि ये सब बातें सभा में इकट्ठे होकर कर लेवेंगे। इस पर बहुत कहने सुनने से दोनों पक्ष की ओर से दो २ प्रबन्धकर्ता नियत किये गये। आर्यों की ओर से सभापति आर्य्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद श्रीमान् चतुर्वेदी कमलापतिजी और पं० गंगाधरजी और जैनियों की ओर से लाला मञ्जूलाल साहब तथा लाला प्यारेलाल साहब नियत हुए। फिर एक पंचम पुरुष सरपंच सभापति के लिये कहा गया। वह पुरुष सरकारी ओहदेदार वकील आदि

हो, वा शहर का कोई प्रतिष्ठित रईस हो वा कोई ज़मीदार हो, चाहे किसी मज़हब का क्यों न हो, उसको दोनों पक्षवाले निष्पक्षपाती धर्मात्मा समझ के स्वीकार करें। वह सभापति शास्त्रार्थ के नियम और विषयों पर दोनों पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ताओं के हस्ताक्षर करा अपने पास रक्खे। जो कोई नियम वा विषय से चलायमान हो उसको यथोचित रोके।

इस पर सेठ फूलचन्द्जी ने कहा कि सभापति और नियमादि सब प्रातःकाल नियत कर लिये जावेंगे, और शास्त्रार्थ का समय भी उसी समय नियत कर दिया जायगा। मन्त्री और पं० गङ्गाधरजी सब को धन्यवाद देकर अपने स्थान को चले आये और आये हुये आर्य पण्डितजनों से निवेदन किया कि उन्होंने प्रातःकाल शास्त्रार्थ के नियम, पंच और विषय स्थिर करने के लिये कहा है। सब की सम्मति हुई कि प्रातःकाल ही सही। तब प्रातःकाल सेठजी साहब ने रात्रि की बातों पर कुछ ध्यान और प्रबन्ध न किया अर्थात् ऐसा भुला दिया कि जाने स्वप्न हुआ था। प्रातःकाल और का और ही ठाठ रच मारा कि एक पत्र संस्कृत का (जिसमें किसी के हस्ताक्षर भी नहीं थे) लिख भेजा। इस पर मन्त्री ने एक पत्र उर्दू ज़बान में लिखा कि आप कृपाकर यह लिख भेजिये कि यह पत्र आप का ही है। इस पर सेठजी साहब के अनुयायी पण्डित आदि लाल ताते हुए और कहा कि हमको म्लेच्छभाषा क्यों लिख भेजी। इस पर मन्त्री और पं० गङ्गाधरजी त्रिपाठी पुनः सेठजी के पास गये और कहा कि आपने पंचम प्रबन्धकर्त्ता पुरुष और नियमों का कुछ प्रबन्ध अभी तक न किया। तब उन्होंने उस पत्र पर पं० छेदालाल के हस्ताक्षर करा दिये और उत्तर दिया कि नियम और पंचम मनुष्य का सब निश्चय पत्रों से हो जायगा, आप पत्र का उत्तर दीजिये।

मन्त्री ने फिर भी निवेदन किया कि ऐसी बातों के निश्चयार्थ पत्रों की लिखा पढ़ी करने की आवश्यकता नहीं, किन्तु दोनों पक्ष के भद्रपुरुष मिलकर मकान, नियम और जिन विषयों पर शास्त्रार्थ हो, निश्चय कर

लेवें। उन्होंने मेरे कथन को सुना न सुना कर यही जवाब दिया कि आप पत्र का उत्तर दीजिये। मन्त्री ने कहा बहुत अच्छा, परन्तु यह काम इस रीति से कदापि अच्छा न होगा। मन्त्री ने अपनी पण्डितमण्डली को वह उक्त संस्कृत का पत्र हस्ताक्षर कराया हुआ उत्तर देने को दिया। इस पत्र के उत्तर की शीघ्रता करने में उनका अभिप्राय यह था कि हमने जो अपनी ओर से दाम देकर पण्डितों को भाड़े का टट्टू बनाया है, आर्य्य लोग इस संस्कृत के पत्र का उत्तर नहीं दे सकते हैं, इसलिये मिलकर प्रबन्ध करना चाहते हैं और जैनियों का मुख्य भीतरी आशय यह था कि इस प्रकार पत्र भेजने करने में ही कुछ समय व्यतीत हो, जब तक कोई और कारण खड़ा हो जायगा तो शास्त्रार्थ होना बचा रहे और आर्य्यों का अभिप्राय था कि साधारण बातों के लिये पत्रव्यवहार से कालक्षेप न हो और मुख्य शास्त्रार्थ का आरम्भ शीघ्र होवे।

## वह जैनियों का प्रथम संस्कृत पत्र यह है :—

( श्रीः )

श्रीमदार्य्यसमाजसभ्यैः फीरोजाबादनगरस्थजैनधर्मि-कृतनत्युत्तरमदोऽवगन्तव्यम् । शराब्ध्यङ्केद्व्दीयप्रथमचैत्र-शुक्लपक्षगुर्वन्वितततृतीयायां शास्त्रार्थो भविष्यतीति तत्र २ भवद्भिरणितम्मुद्रितं च । अतस्स पाङ्क्तघण्टाध्वननतः पाथोऽधिघण्टाध्वननावध्यद्यैव कर्त्तव्यः, परन्तु शास्त्रार्थपद-शक्यस्य शास्त्रीयवाक्यतात्पर्य्यावबोधनिर्णायकतया शास्त्राणां संस्कृतरूपत्वेन च परस्परसंस्कृतालापपूर्वक एव शास्त्रार्थः कर्त्तव्य इत्यस्मदीयेप्सा, शास्त्रार्थानन्तरं शास्त्रार्थविषयः संस्कृते भाषायां च जगद्वैदित्यन्नेयः। शास्त्रार्थापेक्षितजया-

जयनिर्णेतृमध्यस्थविवेचनं समक्षतः परस्पराभिलाषातो वानु-ष्ठेयः । एतावतैवालमल्पाङ्कनतोऽप्यभिप्रायाभिज्ञवृन्देषु ।

संवत् १९४५ भवत्स्नेहिनः

प्रथम चैत्र शुक्ल ३ फीरोजाबादस्था जैनधर्मावलम्बिनः

गुरुवारे. नियतसमयात्पूर्वं पत्रोत्तराभिलाषिणश्च

ह० छेदालालजैन.

भाषार्थः—श्रीमान् आर्य्यसमाज के सभ्यों को फ़ीरोजाबाद नगरस्थ जैनधर्मवालों ने किये नमस्कार के पश्चात् यह जानना चाहिये कि सं० १९४५ के प्रथम चैत्र शुक्लपक्ष तृतीया बृहस्पति-वार को शास्त्रार्थ होगा, इस प्रकार उन २ शहर आदि में आप लोगों ने कहा और छपाया है, इससे वह शास्त्रार्थ १० बजे से ४ बजे तक आज ही कर लेना चाहिये, परन्तु शास्त्रार्थपद का जो अभिप्राय है वह शास्त्रसम्बन्धी वाक्यों से निकले तात्पर्य्य के बोध का निश्चय कराने वाला होने और शास्त्रों के संस्कृतरूप होने से आपस में संस्कृतभाषणपूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहिये, यह हमारी इच्छा है । शास्त्रार्थ के पश्चात् उसका विषय संस्कृत में और भाषा में अनुवाद कराके जगत् को विदित करना चाहिये । जय पराजय का निश्चय करनेवाला एक मध्यस्थ विद्वान् शास्त्रार्थ में अपेक्षित है । उसका विवेचन सामने मिलकर वा परस्पर की इच्छा से होना चाहिये । इस थोड़े ही लेख से भी अभिप्राय जानने वालों में उत्तम ज्ञाताओं में समाप्ति है ।

समीक्षा:—सब महाशयों को ध्यान रखना चाहिये कि पूर्वोक्त जैनधर्मियों का संस्कृतपत्र कैसा है । इसमें शब्द, अर्थ और सम्बन्ध की कहां २ अशुद्धि हैं, सो यह पत्र हमारे भ्रातृवर्गस्थ पं० जियालाल तथा पं०

मिहिरचन्द्रजी की सहायता से लिखा हुआ है क्योंकि इसका पूर्ण अनुमान इस से हुआ कि जैनों के पं० छेदालालादि ने जो पत्र सभा में सब के समक्ष लिखे ( जिसमें मिहिरचन्द्रादि की सहायता नहीं ले सके ) हैं, उन में इस से बहुत अधिक अशुद्धियां हैं। अर्थरूप अशुद्धियां तो उनके भापार्थ से ज्ञात हो जावेंगी। ( शराऽध्यक्षे द्वऽदीय ) यहां 'क्षेन्द्र' ऐसा चाहिये। अस्तु, छोटी २ वातों पर ध्यान न देकर बड़ी अशुद्धि देखिये—( मध्यस्थ विवेचनं ............वानुष्ठेयः ) 'विवेचनं' नपुंसक लिङ्ग का विशेषण 'अनुष्ठेयः' पुँल्लिङ्ग के साथ किया है। संस्कृतज्ञ लोगों के सामने यह अशुद्धि छोटी नहीं है। इस से यह अनुमान होता है यदि धनादि के लोभवश होकर नास्तिक पक्ष की सहायता न करते तो पं० जियालालादि से ऐसी अशुद्धि होनी सम्भव न थी। ईश्वरविमुखों को सहायता देने से इन पर अन्तर्यामी ईश्वर की अप्रसन्नता हुई, जिससे उनकी बुद्धि स्वस्थ न रही। आस्तिक जन अपने सब काम ईश्वर की सहायता से करते हैं।

## इस उक्त संस्कृत पत्र के उत्तर में आर्य्यसमाज का संस्कृत पत्र द्वारा ही उत्तरः—

॥ ओ३म् ॥

श्रीमज्जैनधर्मावलम्बिषु,

भवतां पत्रं समागतं, रात्रौ यन्निर्णीतं तस्मिन् विषये किमपि न लिखितम्। शास्त्रार्थप्रबन्धकर्त्तारः पञ्च सज्जनाः पूर्वं नियोजनीयाः। पश्चात्स्थानं निर्णेतव्यं यत्र शास्त्रार्थः स्यादिति। ततो यैर्नियमैः शास्त्रार्थः स्यात्तेऽपि निश्चेतव्याः। यत्र यत्र विषये शास्त्रार्थेन भवितव्यं सोऽपि लेख्य एव।

संवत् १९४५ — हस्ताक्षराणि गङ्गारामवर्म्मणः
चैत्र शु० ३. — फीरोजाबादस्थार्य्यसमाजामात्यस्य.

भाषार्थः—श्रीमान् जैनधर्मावलम्बि योग्य–पत्र आपका आया, रात को जो निश्चय हुआ था उस विषय में आपने कुछ नहीं लिखा। पहिले शास्त्रार्थ के प्रवन्धकर्त्ता पांच सज्जन पुरुष नियुक्त करने चाहियें। इसके पश्चात् जहां शास्त्रार्थ हो उस स्थान का निश्चय करना चाहिये। इसके अनन्तर जिन नियमों के अनुकूल शास्त्रार्थ हो उनका निश्चय करना योग्य है। जिस २ विषय में शास्त्रार्थ हो, वह भी लिखना चाहिये।

**इस पत्र के जाने पर जैनियों का द्वितीय पत्र जो संस्कृत में आया वह यह है :—**

श्रीमदार्यमतानुयायिनः,

भवदीरितं पत्रमुपलब्धम्। शास्त्रार्थसमयः संस्कृत एव भविष्यतीति नियमः। मध्यस्थभवनप्रकारश्च पूर्वपत्र एव लिखितः मञ्जूलाल प्यारेलालौ प्रवन्धकर्त्तारौ जैनपाठशाला-स्थानं च हस्ताक्षराणि कारयितुमागतेभ्यो गंगारामवर्म्मभ्योऽवर्णि, विषयनिर्णयश्च शास्त्रार्थकाले भविष्यति, यतो वयं यूयञ्च न दूरस्थाः परन्तु समयनियममध्यस्थानाँल्लिखितानामप्युत्तरं भवद्भिर्नालेखि। शास्त्रार्थलिखितसमयमतीत्य पत्रोत्तरप्रदाने किं कारणम्।

संवत् १६४५    १२ बजे    ह० छेदालाल
प्र० चै० शु० ३ बृ०.    दिन के.    जैनधर्मिणः

भाषार्थः—श्रीमान् आर्य्यमत के अनुयायियो ! आपका भेजा पत्र मिला। शास्त्रार्थ का समय वही होगा जो हम पूर्व संस्कृत में लिख चुके हैं और मध्यस्थ होने का प्रकार भी पूर्व पत्र में

लिख चुके हैं। हमारी ओर से मंजूलाल प्यारेलाल प्रबन्धकर्त्ता होंगे। शास्त्रार्थ का स्थान जैनपाठशाला होना चाहिये सो हस्ताक्षर कराने को आये गङ्गाराम वर्मा से कह दिया था। विषय का निर्णय शास्त्रार्थ होने के समय हो जायगा क्योंकि हम और तुम दोनों दूर नहीं हैं परन्तु समय, नियम और मध्यस्थ विषयक उत्तर आपने नहीं लिखा। शास्त्रार्थ का समय जो १० बजे का लिखा था उसके पश्चात् उत्तर देने में क्या कारण है?

इस पर आर्य्यसमाज की ओर से उत्तर (संस्कृत ही में):-

॥ ओ३म् ॥

मावन्मारजित्कक्षान्तसदसदुदन्तालब्धगरिष्ठवरिष्ठाः!

तत्रभवतां पत्रमातुङ्गितम्। श्रुतार्थानेहाः पूर्वभाविनियमेतरेतरोररीकृतान्तरं वादिप्रतिवादिभ्यां समसातजनने चोरीकर्त्तव्यः। जयाजयनिर्णेता कश्चिदपि भवितकुं नार्हतकि। कस्यचित्सार्वभौमसर्वपरीक्षकाधिगतयाथातथ्यार्थस्य पक्षद्वयकविवेचनसामर्थ्याधिष्ठितत्वाभावात्। वादिप्रतिवादिनोर्लेखनद्वारास्पष्टीकृतो विषयएव जयाजयसूचको भविष्यतीति मन्यध्वम्। यच्चोक्तं शास्त्रार्थकालएव विषयो निर्णेय इति तन्न, कुतः? सति कुडये चित्रं भवतीतिनत् पूर्वमेव विषयो निर्णेतव्यः। यच्चोल्लिखितं शास्त्रार्थसमयमतीत्योत्तरप्रदाने किं कारणमिति तत्त्वस्माभिरङ्गीकृतमन्तरेणात्ययनं वक्तुमशक्यम्।

प्र० चै० शु० ३ ह०
सं० ४५. गङ्गारामस्य.

भाषार्थः--श्रीमान् सहनशील सत्यासत्य को प्राप्त होनेवाले महाजनों में श्रेष्ठ जैनधर्मावलम्बियो ! आप का पत्र आया। शास्त्रार्थ का समय पूर्व होने वाले नियम परस्पर स्वीकृत होजाने के पश्चात् दोनों पक्षवालों की सम्मति से स्वीकार करना चाहिये। जय पराजय का निश्चयकर्त्ता कोई निज मनुष्य नहीं हो सकता। कोई सब पृथिवी पर सर्वोपरि शास्त्री सत्यवक्ता पक्षपातरहित यथार्थभाव का ज्ञाता दोनों पक्ष का विवेचन करने में समर्थ अधिष्ठाता हो, वह मध्यस्थ होसके सो सर्वगुणाकर पुरुष का मिलना प्रायः असम्भव होने से मध्यस्थ होना आधुनिक समय पर दुर्लभ है। इसलिये वादीप्रतिवादी के लेख-द्वारा स्पष्ट किया हुआ विषय ही जय पराजय का सूचक हो जायगा अर्थात् उस लेख से अपनी २ बुद्धि के अनुसार दोनों पक्ष में बलाबल समझ लेंगे और जो आपने कहा कि शास्त्रार्थ होते समय विषय का निश्चय कर लेंगे सो मेरी अल्प बुद्धि से ठीक नहीं क्योंकि जब तक भित्ति ( दीवार ) न बन जावे, उस पर चित्र विचित्र चिह्न धरना बन नहीं सकता। इसी प्रकार पहिले विषय का निश्चय कर लिया जाय तब उस पर शास्त्रार्थ का आरम्भ हो सकता है और जो लिखा कि शास्त्रार्थ का समय होजाने बाद उत्तर देने में क्या कारण है ? सो जब केवल अपने पक्ष की सम्मति से तुम लोगों ने नियत किया और हम लोगों की उस पर कुछ सम्मति न हुई तो ( इकतरफ़ी डिगरी हुई ), हमारा पत्रोत्तर देना काल व्यतीतकर हुआ, यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है।

**इस पर जैनियों का जो तृतीय पत्र आया वह यह है किः--**

श्रीमदार्यमतानुसारिणः.

द्वितीयपत्रङ्घण्टात्रयकालात्यय उपलब्धम्, भवद्भिर्जयाजयनिर्णेतृमध्यस्थासम्भवोऽभाणि, लेखद्वारा जयाजयस्पष्टतांऽगीकृता शास्त्रार्थसमयात्पूर्वम्विषयनिर्णयश्चापेक्ष्यते शास्त्रार्थस्थानसमयसंस्कृतभाषाशास्त्रार्थविषये किञ्चिदपि नाऽभाषि, यदि विषयनिर्णयोत्तरमेव शास्त्रार्थचिकीर्षा तर्हि समाचारपत्रेषु विषयनिर्णयमन्तरा मुद्रापणङ्किंविचार्य्याकारि, मध्यस्थासम्भवे शास्त्रार्थासम्भवः। लेखतः शास्त्रार्थस्य वादिप्रतिवादिनोर्विदेशस्थत्वेऽपि सम्भवेऽत्र तत्तत्समाजमन्त्र्यादीनां सङ्गमकृतेः किं प्रयोजनम्। तथापि यदि शास्त्रार्थचिकीर्षा तर्हि सप्तघण्टाध्वनिमारभ्य दशघण्टाध्वनिपर्य्यन्तं जैनपाठशालास्थान आगत्य कर्त्तव्यः, विषयोऽप्येतत्पत्रोत्तरे भवद्भिरेव लेख्यः, नोचेदलम्वृथा समयात्ययेन।

| सं १९४५ | ४ | ह० छेदालाल- |
|---|---|---|
| प्र० चै० शु० ३ बृ०. | बजे. | जैनधर्मिणः. |

भाषार्थः—श्रीमान् आर्य्यमतानुयायियो! आपका दूसरा पत्र तीन घण्टा में मिला, आपने जयपराजय के निश्चयकर्त्ता मध्यस्थ का होना असम्भव कहा और लेखद्वारा जयपराजय स्पष्टता स्वीकार की और शास्त्रार्थ होने के पहिले विषय का निर्णय चाहते हो। शास्त्रार्थ का स्थान, समय तथा संस्कृत वा भाषा में होने के विषय में कुछ नहीं कहा। जो विषय का निश्चय होने पश्चात् ही शास्त्रार्थ करने की इच्छा है तो समाचारपत्रों में

विषय का निर्णय किये बिना क्या विचार के छपाया था ? ( हमारा विचार है कि ) मध्यस्थ का होना असम्भव है तो शास्त्रार्थ होना भी असम्भव, लेखद्वारा शास्त्रार्थ तो वादीप्रतिवादी के विदेशस्थ होने में भी हो जाना सम्भव है । फिर उस २ समाज के मन्त्री आदि के यहां एकत्र करने का क्या प्रयोजन था ? तथापि यदि शास्त्रार्थ करने की इच्छा है तो ७ बजे से १० बजे तक जैनपाठशाला स्थान में आकर करना चाहिये । शास्त्रार्थ का विषय भी इस पत्र के उत्तर में आप ही लिखिये और यह न हो तो व्यर्थ समय न खोना चाहिये अर्थात् शास्त्रार्थ का नाम भी न लेना चाहिये ।

विशेष :—सब महाशयों को ध्यान देना चाहिये कि हमारे लेख में और इनके लेख में क्या भेद है ? हमने लिखा था कि दोनों पक्ष की सम्मति से पहले नियम स्थिर होजावें, फिर शास्त्रार्थ के समयादि का विचार किया जावे, सो नियमों के लिये तो कुछ उत्तर न दिया । इसका कारण एक तो यह है कि जैनी लोग उस पत्र के अभिप्राय को यथावत् समझे ही नहीं और कदाचित् कुछ समझे भी हों तो शास्त्रार्थ करने से डरते हैं और बखेड़ा करके पीछा छुड़ाया चाहते हैं । शास्त्रार्थ का विषय समाचारपत्रों में न छपाया तो उस का अभिप्राय यह कोई सिद्ध नहीं कर सकता कि विना ही नियम और विषय के शास्त्रार्थ हो जायगा । ऐसा हो तब तो विना कारण के भी कार्य्य होजाया करे । जब कोई कहे कि मैं अमुक समय भोजन बनाऊंगा तो उस पर ऐसा आक्षेप नहीं कर सकते कि भोजन बनाने की प्रतिज्ञा के समय यह क्यों नहीं कहा कि मैं आटा से भोजन बनाऊंगा । इस जैनियों के पत्र में कई अशुद्धि हैं, जैसे अभापि अभाषि आदि के स्थान में प्रयुक्त हैं । ( पूर्वम्विषय ) ( किम्विचार्यं ) ( दलम्वृथा ) इत्यादि में परसवर्ण अनुस्वार को मकार लिखना सर्वथा अशुद्धि है । क्योंकि ओष्ठ्य बकार के परे परसवर्ण हो सकता है, दन्त्योष्ठ्य वकार के परे नहीं होता । इत्यादि अनेक २ अशुद्धियां हैं ।

इस पर आर्य्यसमाज की ओर से चतुर्थ उत्तर :-

॥ ओ३म् ॥

श्रीमत्सौमन्तमतावलम्बिषु,

भावत्कपत्रमागतमालोक्येदमुत्तरमाविष्क्रियते शास्त्रार्थ-स्थानसमयसंस्कृतभाषाविषयकमुत्तरं प्राकृतभाषानिर्मितनियमेष्वाविष्कृतमस्माभिः । समाचारपत्रेषु विषयनिर्णयमन्तरेणैव शास्त्रार्थो भवितुमशक्य इत्यत्र किं बाधकं मन्यते भवद्भिः ? शास्त्रार्थः सम्मुख एव स्यात्तस्य लेखनं तु सर्वसाधारणोपकारार्थं परिणामनिष्कर्षणार्थं च कर्त्तव्यमेव । समयश्च भवद्भिर्लिखित एव स्वीक्रियतेऽस्माभिरपि । यदि तत्रभवन्तो वास्तवेन शास्त्रार्थं चिकीर्षन्ति तर्हि मुहुर्मुहुः पत्रगमनागमनेन किमपि प्रयोजनं नास्ति, किन्त्वस्मल्लिखितशास्त्रार्थविषयान्प्राकृतभाषानिर्मितनियमांश्च स्वीकुर्वन्तु । यदि काचिद्विप्रतिपत्तिः स्यात्तदाभिमतविषयनियमांल्लिखित्वा प्रेरयन्तु । अद्य तु भवन्नियमितकाले शास्त्रार्थो भवितुमशक्यः । यतः कालादारभ्य सायं प्रातर्वा श्वो भविता स लेख्यो भवद्भिर्यतः पूर्वं वयमपि जानीयामेति शम् ।

४॥ बजे. ह० गङ्गारामस्य.

भाषार्थः—श्रीमान् जैनधर्मियों के समीप निवेदन—आपका पत्र आया, उसका उत्तर दिया जाता है। शास्त्रार्थ का स्थान,

समय और संस्कृत वा भाषा में होने के विषयक उत्तर भाषा में बनाये नियमों में है, सो आप के पास भेजे जाते हैं। समाचार-पत्रों में हम लोगों ने ऐसा कहां छपाया है कि विषय निश्चय किये विना शास्त्रार्थ होगा। विषय का निश्चय हुए विना शास्त्रार्थ होना ही अशक्य है, इसमें क्या आप कुछ बाधक समझते हो?, शास्त्रार्थ सम्मुख ही होना चाहिये, उसका लिखा जाना सर्व-साधारण के उपकारार्थ और परिणाम निकालने के लिये है। आप ने जो ७ बजे से १० बजे तक समय लिखा, उसको हम लोग भी स्वीकार करते हैं। यदि आप लोग वस्तुतः शास्त्रार्थ किया चाहते हो, तो बार २ पत्रों के आने जाने से क्या प्रयोजन है? किन्तु हमारे लिखे शास्त्रार्थ के विषय और भाषा में बनाये नियमों को स्वीकार कीजिये। यदि कुछ विरुद्ध समझो तो अपने अभिमत विषय और नियमों को लिख कर भेजो। आज तो आप के नियत किये समय में शास्त्रार्थ होना अशक्य है पर कल प्रातःकाल वा सायंकाल जब से जब तक होना चाहिये सो आप लिखिये जिससे हम लोग भी पहिले से जानलें और उद्यत रहें।

**इस उक्त पत्र के साथ शास्त्रार्थ के निम्नलिखित नियम और विषय जैनियों के पास भेजे गये थे :—**

१—शास्त्रार्थ में पांच पुरुष प्रबन्धकर्त्ता होने चाहियें, दो २ उभय पक्ष की ओर से रहें, जिनको अपने २ पक्षवाले नियत करें। एक प्रबन्धकर्त्ता सभापति मध्यस्थ हो, जिसको दोनों पक्षवाले सम्मति कर नियत करें।

२—शास्त्रार्थ किसी मध्यस्थ के स्थान में व सरकारी स्थान में होवे अथवा अन्यत्र जिसको उभय पक्ष स्वीकार करे।

३—शास्त्रार्थ में दोनों पक्ष के बराबर मनुष्य होवें, किन्तु सर्वसाधारण मनुष्य न आने पावें।

४—दोनों पक्ष वाले शास्त्रार्थ का विषय आरम्भ से पहिले अपनी २ ओर से लिख के एक दूसरे के हस्ताक्षर कराकर सभापति के पास रक्खें।

५—सभा में एक बार में एक ही वादी वा प्रतिवादी बोले, अन्य कोई किसी के बीच में न बोलने पावे।

६—प्रश्न के लिये जितना समय रहे, उससे चौगुना समय उत्तरदाता को मिले।

७—अपनी २ पक्ष की ओर से अधिक से अधिक पांच २ मनुष्य शास्त्रार्थ के लिये नियत करें।

८—जो २ विषय शास्त्रार्थ के लिये नियत हो, उसके विरुद्ध पक्ष पर कुछ भी विषय बीच में न छेड़ा जावे।

९—यह शास्त्रार्थ अक्षर २ यथावत् तीन प्रति में लिखा जावे। दो प्रति दोनों पक्ष की ओर से और एक सभापति की ओर से लिखी जावे। उन सब प्रतियों पर प्रश्न वा उत्तरदाता के तथा सभापति के हस्ताक्षर बीच २ होते जावें।

१०—शास्त्रार्थ दोनों पक्ष वालों की सम्मत्यनुसार संस्कृत में ही हो। पर प्रश्न वा उत्तर लिखाने पश्चात् उसका आशय नागरी भाषा में अनुवाद कर सभा के सब मनुष्यों को सुना दिया जाया करे।

११—एक साथ में एक प्रश्न ही हो सकेगा, उस पर उत्तर प्रत्युत्तर पांच बार या दश बार से अधिक न होना चाहिये।

१२—संस्कृत की अशुद्धि शुद्धि पर कुछ विचार आ पड़े तो जिस शास्त्र के अनुसार निश्चय किया जावे, उसको प्रथम नियत कर लेवें।

१३—शास्त्रार्थ जैनधर्मियों की इच्छानुसार दिन में वा रात्रि में हो, पर चार घण्टे बाद उठने पर किसी पक्ष का पराजय न समझा जावेगा, अर्थात् प्रतिदिन चार घण्टा से अधिक न होना चाहिये।

१४—उभय पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता पण्डित लोग अपने २ मत को मानते अवश्य हों, अर्थात् अन्यमतावलम्बी पुरुष अन्य की ओर से नियत न हो सकेगा।

१५—दोनों पक्ष वाले वादी प्रतिवादी प्रश्न वा उत्तर करने के लिये १० मिनट तक परस्पर सम्मति कर सकेंगे।

१६—यदि कोई अपने पक्ष के वादी प्रतिवादी को बदला चाहे तो सभापति की आज्ञा से बदल सकेगा। सभापति की आज्ञा विना सभा में कोई अन्य मनुष्य बीच में न बोल सकेगा।

## शास्त्रार्थविषया :—

१—अनन्यकर्तृकायाः सृष्टेः कर्त्ता सनातन ईश्वरः कश्चिदस्ति न वा?

२—जीवः कोऽस्ति, तस्य चेश्वरेण कः सम्बन्धः?

३—चतुर्विंशतिस्तीर्थङ्कराः केऽभूवन्, किं च तेषां सामर्थ्यम्? कियत्परिमाणानि च तच्छरीराणि?

४—जीवरक्षा च कपर्य्यन्तं भवितुं शक्या?

५—रथयात्रा काऽस्ति, किमर्थं च कर्त्तव्या?

६—अतस्मिंस्तद्बुद्धिर्मिथ्याज्ञानं तत्त्वज्ञानं वेति?

भाषार्थः—१—जिसका एक सर्वोपरि से भिन्न कर्त्ता नहीं हो सकता, ऐसी सृष्टि का कर्त्ता सनातन ईश्वर कोई है वा नहीं?

२—जीव कौन है, और उसका ईश्वर के साथ क्या सम्बन्ध है ?

३—चौबीस तीर्थङ्कर कौन हुए, उनका क्या २ सामर्थ्य था, और कितने २ बड़े उनके शरीर थे ?

४—जीवरक्षा कहां तक हो सकती है ?

५—रथयात्रा क्या है और किसलिये करनी चाहिये ?

६—और को और समझना मिथ्याज्ञान है, वा तत्वज्ञान ?

**इस पर जैनियों का जो पत्र आया वह यह है :—**

श्रीमदार्य्यमतानुयायिनः !

समक्षतो लेखनेन च प्रबन्धकर्त्तादिनिर्णयेऽपि यूयन्नायाताः शास्त्रार्थनियतसमयद्वयात्ययनञ्च कृतम् । इदानीं दशघण्टा ध्वनिता अतो यूयं शास्त्रार्थङ्कर्तुमसमर्था इत्यनुमितमित्यलम् ।

| संवत् १९४५ | १० | ह० छेदालाल |
|---|---|---|
| प्र० चै० शु० ३ बृ०. | बजे. | जैनधर्मिणः. |

भाषार्थः—श्रीमान् आर्य्यमतानुयायियो ! सामने और लिखने द्वारा भी प्रबन्धकर्त्ता आदि का निश्चय होजाने पर भी तुम नहीं आये । शास्त्रार्थ के नियत किये दो समय भी टाल दिये, अब दश बज गये, इससे तुम लोग शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हो, यह अनुमान है ।

विशेषः—इससे पहिले जो पत्र भेजा, उसके साथ शास्त्रार्थ के नियम और विषय लेकर मंत्री और श्री चतुर्वेदी कमलापतिजी

सभापति सेठ फूलचन्दजी के पास इस अभिप्राय से गये कि पत्रों द्वारा नियमादि शीघ्र निश्चय होने कठिन हैं और ऐसा ही झगड़ा रहा तो कल ता० १६ को भी शास्त्रार्थ न हो सकेगा, इसलिये सामने नियमों का निश्चय शीघ्र होकर कल से शास्त्रार्थ होने लगे। मंत्री ने सेठजी से कहा कि आप इन नियमों और विषयों को देख सुनकर सम्मति कर लीजिये। इस पर भी उनके सहकारी लोगों ने यही उत्तर दिया कि सब बातों का निश्चय पत्र द्वारा कीजिये। इस पर मंत्री आदि ने बहुत कुछ कहा, पर उन्होंने सिवाय लबड़धोंधों के प्रबन्ध की बात एक भी नहीं मानी। इसके पश्चात् मंत्री आदि चले आये और नियम जो ले गये थे, उनको पत्र द्वारा भेजा। उसका उन्होंने कुछ उत्तर न दिया और एक पत्र (पूर्वोक्त) फिर लिख मारा, जिसका हमारे पत्र से कुछ सम्बन्ध नहीं। हमने लिखा कुछ उन्होंने उत्तर कुछ और ही दिया, (आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे)।

इस उक्त पत्र में लिखते हैं कि "प्रबन्धकर्त्तादि का निश्चय हो चुका तो तुम नहीं आये"। क्या हम लोग इनके नौकर हैं जो इनके बुलाने मात्र से इनके घर पर शास्त्रार्थ के लिये चले जाते और प्रबन्धकर्त्तादि का निश्चय कहां हो चुका था? क्या मिथ्या लिखते लज्जा नहीं आई? शास्त्रार्थ के मूलकारण नियमों पर तो अभी झगड़ा ही हो रहा है। विना ही नियमों के शास्त्रार्थ का समय अपने मनमाना लिख भेजा। क्या तुम्हारा लिखा समय राजाज्ञा के तुल्य था, जिसको हम निर्विवाद मान लेते। (जो महाशय इस पर ध्यान देंगे उनको यथावत् ज्ञात हो जायगा कि जैन लोग विना नियमों के शीघ्र हल्ला गुल्ला करके अपना पीछा छुड़ाना चाहते थे)।

## इसके पश्चात् इस उक्त पत्र का आर्यों की ओर से उत्तर दिया गया :—

श्रीमज्जैनमतानुयायिनः,

पूर्व्वमप्यस्माभिरलेखि, नियमनिर्णयमन्तरा नैकान्ततस्तत्रभवन्तो वक्तुमर्हन्ति यन्नियतसमयद्वयमतिक्रान्तमिति। यदि नियमपत्रं स्वीकृत्य तत्र हस्ताक्षराणि कृत्वा ब्रूयुस्तदा तु प्रमाणीकृतं स्यात्। यदि भवन्तः शास्त्रार्थं कर्त्तुमिच्छन्ति तर्हि सद्यो नियमान् स्वीकृत्य हस्ताक्षराणि कृत्वा प्रेरयन्तु। वयं चेदानीमेव शास्त्रार्थं कर्त्तुं सन्नद्धाः। यदि नियमानन्तरेण कर्त्तुमिच्छन्ति तर्हि ज्ञायते न शास्त्रार्थं चिकीर्षन्तीति। अस्माभिश्च यदत्रं प्रेरितं तस्योत्तरं किमपि न दत्तं, तदिदानीं सद्यो दातव्यमिति।

हस्ताक्षराणि

सं० १६४५ गङ्गारामवर्म्मणः फ़ीरोज़ाबाद-

प्र० चै० शु० ३. स्थार्यसमाजामात्यस्य.

भाषार्थः—पहिले भी हमने लिखा था (कि सब से पहिले नियम स्थिर करना चाहिये तब समय नियत किया जावे) नियमों का निश्चय किये विना एक अपनी ओर से आप नहीं कह सकते कि तुमने दो समय टाल दिये। ऐसे तो हम भी कह सकते हैं कि तुमने हमारे लिखे नियमों को टाला, कुछ उत्तर नहीं दिया, इससे तुम्हारा पराजय हुआ। यदि आप नियमपत्रों को स्वीकार कर हस्ताक्षर करके भेज देते तो हमारे न आने का उल्हाना मान भी लिया जाता। यदि आप शास्त्रार्थ करना वस्तुतः अन्तःकरण से चाहते हैं, तो शीघ्र नियमों को स्वीकार करके हस्ताक्षर कर भेजिये और हम लोग इसी समय शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। यदि आप नियमों के विना ही हल्ला गुल्ला

किया चाहते हो, तो ज्ञात होता है कि शास्त्रार्थ करने की इच्छा भीतर से नहीं है। हम लोगों ने जो पत्र भेजा था, उसका उत्तर आपने कुछ नहीं दिया, सो उत्तर शीघ्र दीजिये।

विशेष :—यह उक्त पत्र जब भेजा गया, तब इस पर जैनियों ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उनकी ऐसी लीला देखकर सामाजिक पुरुषों ने बस्ती के भद्रपुरुषों को बुलाकर सेटजी के पास भेजा कि यदि आप लोगों को शास्त्रार्थ करना है तो नियमों को स्वीकार कर लीजिये। प्रयोजन यह था कि हम लोग जो नियमपूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, उनको मध्यस्थ होकर देख लीजिये कि वे नियम दोनों पक्ष की ओर एकसा सम्बन्ध रखते हैं वा हमारा कुछ स्वार्थ है। इस पर नागरिक मध्यस्थ लोगों ने हमारी उनकी बातें सुन के और नियमादि देखकर सेठ फूलचन्दजी और अन्य जैनियों के पास जाकर कहा कि आर्य्य लोग निष्पक्षपात होके नियमपूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, आप लोग स्वीकार क्यों नहीं करते? इस पर जैन लोगों ने अनेक जगड्वाल की बातें कहीं। जिससे शास्त्रार्थ होने की कोई आशा न जान पड़ी और उन नागरिक भद्रजनों को विश्वास हो गया कि जैन लोग शास्त्रार्थ करने से हटते हैं।

ऐसा हाल देख के उन लोगों ने आर्य्यसमाज की उपस्थित सभा में आके स्वयमेव उच्चस्वर से कहा कि—"हमको ठीक निश्चय होगया कि आर्य्यों के सामने जैन लोग शास्त्रार्थ नहीं कर सकते किन्तु टालाटूली करते हैं। हम सब के सामने लिख सकते हैं कि आर्यों का जय और जैनियों का पराजय हुआ।"

इस पर आर्य्यसमाज के लोगों ने उन सत्पुरुषों से एक पत्र लिखाके हस्ताक्षर करा लिये। वह पत्र यह है :—

"हम सत्य परमात्मा को जानकर कहते हैं कि मैं आर्यों की तरफ से जैनियों के पास गया। मैंने शास्त्रार्थ करने में जैनियों को इनकार पाया।

हस्ताक्षर लक्ष्मीचन्द्र गुप्त. ह० गुलजारीलाल. ह० रघुवरदयाल.

और जितने आर्य्यजन एकत्रित हुए थे, सब को विश्वास होगया कि अब शास्त्रार्थ नहीं होगा, कल अपने २ घर चलेंगे। यह सब समाचार ता० १५ मार्च को हुआ। इसी रात्रि के १२ बजे तक समाप्त हुआ। सब लोग सो गये।

ता० १६ मार्च १८८८ ई० को प्रातःकाल आर्य्य लोग नित्य कृत्य शौच सन्ध्यादि करके आये। तबतक शहर में हल्ला मच गया कि जैन लोग शास्त्रार्थ करने से हट गये। बहुतेरे लोगों ने तो जैन सेठजी से जा २ कर कहा भी कि यह तो सहज में ही तुम पराजय करा बैठे। तब तो सेठजी को बड़ा विचार पड़ा। इधर आर्य्यसमाज की ओर से भी दो एक पुरुष गये और सेठजी से कहा कि अब भी शास्त्रार्थ करावें तो ठीक २ निश्चय कीजिये, नहीं तो हमारे पंडित आज अपने २ स्थान को जावेंगे। इस पर सेठजी ने कहा कि हमारे अनुमतिकर्त्ता मंजूलाल प्यारेलालजी आजावें तब सलाह करके उत्तर देवें। पश्चात् सामाजिक जन चले आये।

इसके पश्चात् सेठजी ने अपना उपहास जान शहर के दो एक मध्यस्थ पुरुष समाज में भेजे और उन्होंने कहा कि जैनी लोग शास्त्रार्थ करना चाहते हैं और विशेष कर मध्यस्थ नागरिक लोगों की सम्मति हुई कि जैनियों की ओर से सेठ फूलचन्दजी और आर्यों की ओर से पं० भीमसेनजी शर्मा दोनों महाशय जैनपाठशाला में बैठकर नियमों का निश्चय कर लेवें और उनको दोनों पक्षवाले स्वीकार करें।

जैन लोगों ने भी यह स्वीकार कर लिया। सब की सम्मति से पं० भीमसेन शर्मा और चतुर्वेदी कमलापतिजी सभापति जैनपाठशाला में गये और सेठ फूलचन्दजी वहां इसीलिये जाकर बैठे थे। वहां पहुँच कर दोनों की सम्मति से विशेष कर सेठ फूलचन्दजी की सम्मति से नियम जो पहिले लिखे हुए थे उन्हीं को काट बढ़ा के ठीक किया और यह ठहरा कि इन नियमों की शुद्ध प्रति कराली जावे। सभा के आरम्भ में पांचों प्रबन्धकर्त्ताओं के हस्ताक्षर भी हो जावें।

इस प्रकार बातें चीतें होते २ दश बज गये थे और बारह बजे से चार बजे तक शास्त्रार्थ ठहरा था। इसलिये उसी समय नकल होकर हस्ताक्षर नहीं हो सकते थे और शास्त्रार्थकर्त्ताओं को भोजन भी करने थे। पश्चात् उन नियमों की शुद्ध नकल कराई गई और सब ने भोजन किये, तबतक शास्त्रार्थ का समय आगया।

मनुष्यों को शास्त्रार्थ में जाने के लिये टिकट बँट गये थे। टिकट सेठजी की ओर से बांटे गये थे। उन नियमों को लेकर ठीक बारह बजे दिन को आर्य्य लोग जैनपाठशाला में पहुँचे और जैन लोग भी आये। कोतवाल साहब कितने ही यमदूतों के साथ प्रबन्धार्थ आये। जब सब लोग यथावस्थित बैठ गये, तब यह प्रस्ताव आर्य्यों की ओर से हुआ कि जो नियम पं० भीमसेन शर्मा और सेठ फूलचन्दजी ने नियत किये हैं वे सभा में सुना दिये जावें। तब इन नियमों के अनुसार कार्य होवे। इस पर सभा की आज्ञा हुई कि नियम सुना दिये जावें।

## वे नियम ये हैं:—

(१) सभाप्रबन्ध के लिये पांच पुरुष प्रबन्धकर्त्ता नियत हुये। आर्य्यों की ओर से चौबे कमलापतिजी और पं० गङ्गाधर त्रिपाठीजी जैनों की ओर से लाला मंजूलालजी और लाला प्यारेलालजी और उभय पक्ष की ओर से एक चौबे ज्वालाप्रसादजी सभापति। इन पांचों महाशयों को निम्नलिखित नियमानुसार सभा का प्रबन्ध करना होगा।

(२) सभा में वे महाशय जायंगे कि जिनके पास टिकट होगा, पर वे सभास्थ पुरुष दो सौ से अधिक न होंगे।

(३) प्रश्नोत्तर दोनों ओर से बराबर ही होने चाहियें। प्रश्न के लिये पांच मिनट और उत्तर देने के लिये २० मिनट समय नियत किया है और जबतक एक प्रश्न पर पूरी वार्त्ता न हो जाय तब तक दूसरा विषय न छेड़ा जाय।

(४) उभयपक्ष की ओर से दो २ पण्डित शास्त्रार्थ में उपस्थित होकर वार्त्ता करें, अर्थात् आर्य्यों की ओर से पं० देवदत्तजी और पं० भीमसेनजी ओर जैनियों की ओर से पं० छेदालालजी और पं० पन्नालालजी। इन से भिन्न कोई न बोल सकेगा।

(५) यह शास्त्रार्थ अक्षर २ यथावत् तीन प्रतियों में लिखा जायगा। दो प्रति उभयपक्ष की ओर से, तीसरी सभापति की ओर से। और इन तीनों प्रतियों पर उभयपक्ष के पण्डितों और सभापति के हस्ताक्षर होने चाहियें।

(६) शास्त्रार्थ दोनों पक्षों की सम्मत्यनुसार संस्कृत ही में होगा परन्तु उसी जगह संस्कृत का अनुवाद करके नागरी भाषा में सब को सुना देना चाहिये।

(७) शब्द की शुद्धाऽशुद्धि पर कुछ विशेष वार्त्ता वा विचार न किया जायगा। सज्जन लोग छप जाने पर अपने आप ही जान लेंगे।

(८) उभयपक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता अपने २ ही मत के माननेवाले हों, अर्थात् अन्य मतावलम्बी पुरुष अन्य की ओर से न बोलेंगे।

(९) उभयपक्ष वाले अपने २ वर्ग में १० मिनट से अधिक सम्मति न कर सकेंगे।

(१०) शास्त्रार्थ जैनों की इच्छानुसार दिन में वा रात्रि में हो, पर चार घण्टे से अधिक प्रतिदिन न होगा। समय की पूर्त्ति पर उठने में जयाजय न समझना चाहिये।

(११) ता० २० मार्च को शास्त्रार्थ बन्द रहेगा। कदा[तथा]पि साहब कलेक्टर बहादुर आज्ञा दें तो हो सकेगा।

ये सब नियम सुनाये गये। इस पर जैन लोगों ने अनेक शङ्का पैदा की और कहा कि ये नियम हमारे साथ नहीं नियत हुए। इस प्रकार परस्पर बहुत से झगड़े होते २ छठे नियम पर अधिक विवाद हुआ। इस

का कारण यह था कि आर्य लोग कहते थे शास्त्रार्थ संस्कृत में हो और जैन लोग भाषा में करने का हठ करते थे। आर्य लोग संस्कृत में होने पर इसलिये बल देते थे कि जैन लोगों ने प्रथम ही पत्र में संस्कृत में होने की प्रतिज्ञा की थी। उस समय जैनों ने समझा था कि हम अपनी ओर से पं० मिहिरचन्द्र और जियालाल ( जिनको कुछ धन देकर लाये थे ) से शास्त्रार्थ करावेंगे। वस्तुतः जैनियों में कुछ भी संस्कृत विद्या का बल नहीं था परन्तु उनमें ( निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ) जैसे वृक्षरहित देश में एरण्ड का वृक्ष भी बड़ा वृक्ष मालूम होता है, वैसे छेदालाल, पन्नालाल साधारण विद्यार्थियों के तुल्य कुछ २ संस्कृत जानते थे, सो सेठ फूलचन्दजी ने भी इनके ऊपर शास्त्रार्थ का आरम्भ नहीं किया था किन्तु पण्डित मिहिरचन्द्र और जियालाल ( भाड़े के टट्टुओं ) के भरोसे शास्त्रार्थ का बल बांधा था और इसी बल से संस्कृत में करने की प्रतिज्ञा लिखाई थी। पर जब नियम स्थिर किये गये, तब यह निश्चय होगया कि अन्य पक्ष का पण्डित अन्य की ओर से मुख़्त्यार बन के शास्त्रार्थ न कर सकेगा अर्थात् जो २ पण्डित जिस २ की ओर से नियत हो, वह उस मत को यथावत् मानता हो। इस नियम से भाड़े के पण्डित तो निकल गये। ज़ब जैनियों का भाड़े का बल टूट गया, तब संस्कृत में शास्त्रार्थ करने से इन्कार करते थे और ऊपर से प्रसिद्ध करते थे कि सब लोग कुछ नहीं समझेंगे, इससे भाषा में होवे। इसका उत्तर आर्य लोग देते थे कि संस्कृत की भाषा करके सभा में समझा दी जाया करेगी और यह भी बल देते थे कि तुम लोगों ने प्रथम प्रतिज्ञा की थी, इसलिये संस्कृत में ही होना चाहिये।

इस प्रकार नियमों पर झगड़ा होते २ जैनियों ने एक मध्यस्थ का झगड़ा छेड़ दिया। इस पर दोनों ओर से बहुत विवाद होता रहा। जैनियों की ओर से पं० छेदालाल ने कहा कि स्वामी विशुद्धानन्दजी, श्रीधरजी तथा जो २ पण्डित आर्य्यसमाजी और जैनियों के मत में नहीं,

उनमें से चाहे जो परिडत मध्यस्थ कर लिये जावें। जो शास्त्रार्थ लिखा-पढ़ी द्वारा हो सो उनके पास भेज दिया जावे, जिसके पक्ष को वे अच्छा बतलावें, उसका पक्ष ठीक समझा जावे। आर्य्यों की ओर से पं० भीमसेन शर्मा ने कहा कि प्रथम ऐसा पुरुष मिलना ही दुर्लभ है कि जो सर्वथा निष्पक्ष और निर्लोभ होकर सत्य कहे। बहुधा परिडत लोग थोड़े २ धन के लोभ से ईसाइयों तक को अपने मत के खराडनविषयक पुस्तक बना देते हैं, ( जैसे पं० मिहिरचन्द्रादि यद्यपि जैनमत को मानते नहीं तथापि धनलोभ से नास्तिकों की ओर से वेद का खराडन करने आये हैं ), तो किस का विश्वास किया जावे ? और कदाचित् कोई निष्पक्ष पुरुष मिल भी जावे और वह धर्मपूर्वक किसी एक पक्ष का पराजय कह देवे, तो क्या उस समुदाय के लोग सब उस पक्ष को छोड़ देवेंगे ? मेरी समझ में जैन लोग तो ऐसे हठीले हैं कि उनके तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ साक्षात् आकर जैन पक्ष को पराजित कहें तो भी न मानेंगे। अर्थात् इस मध्यस्थ के झगड़े से यही प्रयोजन होगा कि हज़ार पांचसौ ख़र्च करके अपने पक्ष के विजय का डंका परिडत रूप बाजीगरों से बजवा देंगे।

इस पर बहुत काल तक विवाद होता रहा और शास्त्रार्थ का आरम्भ न हुआ। आर्य लोग कहते थे कि पहले नियम भले ही मत मानो किन्तु अब पंचों की सम्मति से और नये नियम बना लिए जावें तथा मध्यस्थ कोई नहीं करना चाहिये तथा विना नियमों के हम शास्त्रार्थ न करेंगे। जैन लोगों का कथन था कि हम नियम एक भी न मानेंगे और मध्यस्थ कोई अवश्य होवे। ऐसे होते २॥ घराटे बीत गये। सभा के सब लोग व्याकुल होगये और मालूम हुआ कि सभा उठना चाहती है। तब कोतवाल साहब ने कहा कि आज जिस पक्ष के लोग, चाहे किसी कारण से, शास्त्रार्थ न करेंगे, उन्हीं का पराजय समझा जायगा। यद्यपि आर्य्यसामाजिक लोगों का विचार नहीं था कि विना नियमों के ऊटपटांग शास्त्रार्थ किया जावे, ( अनुमान से ज्ञात होता है कि जैनी लोगों ने यह

सम्मति करली थी कि आर्य लोग विना नियमों के शास्त्रार्थ नहीं करेंगे, इसलिये हम नियमों को तोड़ देवें और कह देवेंगे कि आर्य्य लोगों ने शास्त्रार्थ नहीं किया, इससे उनका पराजय होगया ), तो भी अनिष्ट परिणाम देखकर विचार किया कि हम अब विना ही नियमों के शास्त्रार्थ करेंगे, परन्तु कोतवाल साहब ने उर्दू में शास्त्रार्थकर्त्ता दोनों पक्ष के पण्डितों के नाम लिख लिये थे। इसके पश्चात् दोनों पक्ष वालों का विचार हुआ कि शास्त्रार्थ होना चाहिये। तब ( अहमहमिका ) का झगड़ा हुआ कि पहिले कौन प्रश्न करे। सभा सम्मति से यह निश्चय हो गया कि दोनों पक्ष वाले साथ ही अपना २ प्रश्न लिख के अपने २ प्रतिपक्षियों को देवें। इस के अनुसार शास्त्रार्थ का प्रारम्भ हुआ—

# शास्त्रार्थ का प्रारम्भ

## प्रथम दिन, ता० १६ मार्च सन् १८८८ ई०

### प्रथम पत्र जैनियों का:—

प्रथमप्रश्न—भोविद्वज्जनवर्य्याः जगद्वृत्तिपदार्थानां प्रमेयत्वं सर्वसाधारणं। प्रमेयसिद्धेः प्रमाणाधीनत्वेन। प्रथमं प्रमाणनिर्णयोऽपेक्षितः अतः तत्स्वरूपं किं कति च भेदाः कश्च तद्विषयः किञ्च तत्फलं तत्प्रामाण्यं स्वतः परतो वेत्यस्माकम्प्रश्नः।

ह० छेदालालजैनधर्मिणः. ह० पन्नालालजैनमतानुयायिनः.

भाषानुवाद:—भो विद्वानों में श्रेष्ठजनो! जगत् में वर्त्तमान पदार्थों का प्रमेय होना सर्वसाधारण, ( मिहिरचन्द्रकृत भाषानुवाद— "पदार्थों को प्रमेय मानते हैं" ठीक नहीं है क्योंकि ज्ञान विषयक कोई क्रिया

संस्कृत में नहीं है । पदार्थ शब्द षष्ठ्यन्त है, उसको द्वितीयान्त करना ठीक नहीं, केवल अस्ति सामान्य क्रिया का अध्याहार हो सकता है । ) और उस प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन होने से पहिले प्रमाण का निश्चय अपेक्षित है, इसलिये उसका स्वरूप क्या है, उसके भेद कितने हैं, उसका विषय क्या है और उस प्रमाण का फल क्या है, उसका स्वतःप्रामाण्य वा परतःप्रामाण्य है, यह हमारा प्रश्न है ।

इसके साथ ही आर्यों की ओर से प्रथम विचारणीय प्रश्न दिये गये—

## प्रथम पत्र आर्यों का:—

सुखमार्गान्वेषणार्था सर्वस्य प्राणभृतः प्रवृत्तिस्तत्प्राप्ति-र्जैनसम्प्रदायात्कथं सम्भवति । जिनशब्दस्य कः पदार्थो जैनशब्दस्य चानयोश्च कः सम्बन्धः । जिनशब्दवाच्यो यः कश्चिदभिमतोऽस्ति स नित्य आहोस्विदनित्यः । जिनजैन-पदार्थयोर्लक्षणं स्वरूपं च वक्तव्यमिति । तत्पूजनं सफलं विपरीतं वा, यदि सफलं तर्हि किंफलकम् ?

ह० भीमसेन शर्म्मणः. ह० देवदत्तशर्म्मणः

भाषानुवादः—सुख का मार्ग खोजने के लिये सब प्राणी प्रवृत्त हो रहे हैं, उस सुख के मार्ग की प्राप्ति जैन संप्रदाय से कैसे हो सकती है ? जिन और जैन शब्द से किस वस्तु का ग्रहण होता है अर्थात् जिन जैन का वाच्यार्थ क्या है ? और जिन तथा जैन का परस्पर ( पितापुत्रादि ) क्या सम्बन्ध है ?, जिन शब्दवाच्य जो कोई पदार्थ माना है, वह नित्य है वा

अनित्य ? जिन जैन इन दोनों पदों और इनके वाच्य अर्थों के लक्षण और स्वरूप कहो। उस जिन का पूजन सफल है वा निष्फल ? यदि सफल है, तो उसका क्या फल है ?

विशेष:—यह पत्र लिखकर जैनियों को दिया गया और इससे पहिला जैनियों का पत्र आर्यों के पास आया। सब महाशयों को विचारना चाहिये कि आर्य्यों के पत्र का जो उत्तर जैनियों ने दिया है, वह आर्य्यों के प्रश्न से क्या सम्बन्ध रखता है ? और साथ ही इस पर भी ध्यान रक्खें कि जैनियों के पत्र का जो आर्य्यों ने उत्तर दिया है, वह प्रश्न से कितना सम्बन्ध रखता है —

## आर्य्यों के प्रथम पत्र के उत्तर में जैनियों का दूसरा पत्र:—

मानाधीना मेयसिद्धिरिति न्यायेन युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात्प्रथमं प्रमाणनिर्णयः आवश्यकः। तन्निर्णयाभावे मेयानां निर्णयो दुर्घटः, अतएव ममोक्तपूर्वपक्षस्य आदौ परामर्शो युक्तः।

ह० छेदालाल. ह० पन्नालाल.

भाषानुवाद:—प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन है। इस न्याय से तुम्हारे कहे ( जिनजैनादि ) पदार्थों के प्रमेयरूप होने से पहिले प्रमाण का निर्णय होना आवश्यक है, क्योंकि प्रमाण निश्चय के बिना प्रमेय का निश्चय होना दुर्घट है, इससे हमारे कहे पूर्वपक्ष का पहिले विचार करना चाहिये।

विशेष:—इस पत्र में ( ममोक्तपूर्वपक्षस्य ) यह बड़ी भारी अशुद्धि है। विद्वानों को इनका पाण्डित्य अच्छे प्रकार ज्ञात हो जायगा। इन

पहिले दो पत्रों में बड़ी २ अशुद्धि कम हैं क्योंकि यह संस्कृत पण्डितों ( मिहिरचन्द्रादि ) ने पहिले ही लिखा दिया था कि तुम यह प्रश्न करना, सो छेदालाल जैन ने सभा के बीच वह पर्चा निकाल के नक़ल कर दिया था और कुछ भूले तब मिहिरचन्द्र को पूछने लगे। तब आर्य्यों ने कहा कि यह शास्त्रार्थ आर्य्यों और जैनियों का है। यदि अन्य कोई पण्डित जैनियों को सहायता देवे तो उचित होगा कि प्रथम यज्ञोपवीत उतार के जैनी बन जावे।

इस पर मिहिरचन्द्र चिढ़ कर बोले कि मैं जैनियों की ओर नहीं, किन्तु दोनों को पतित समझता हूं। परन्तु यह विचार न किया कि धर्मशास्त्र के अनुसार ( संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ) वैदिक धर्म से पतित जैनियों के साथ वर्षों से आचरण करने वा उनका धान्य खाने से मैं भी पतित होगया हूं। यदि धर्मशास्त्रों को विचारते और अपने को पतित समझ लेते तो क्यों दूसरों को पतित कहते ? एक चोर दूसरे चोर को चोर नहीं कह सकता। चोर २ मौसियाते भाई होते हैं। इससे मिहिरचन्द्र का अभिप्राय यह था कि मैं किसी की ओर नहीं, दोनों को पतित समझता हूँ, परन्तु रुपये की ओर हूँ, क्योंकि रुपया पतित नहीं है, उसी से प्रयोजन है।

अब आर्य्यों ने जैनियों के प्रथम पत्र का जो उत्तर दिया है, उसको ध्यान देकर प्रश्न के अक्षरों से मिलाइये—

## जैनियों के प्रथम पत्र के उत्तर में आर्य्यों का दूसरा पत्रः—

'अपदं न प्रयुञ्जीत' इति शब्दशास्त्रनियमात्। अपदत्वं च विभक्तिरहितत्वं, सुप्तिङन्तं पदमिति शासनात्, प्रथमप्रश्न इति लेखोऽपभाषणम्। यदि जगद्वृत्तिपदार्थानां सर्वसाधारणं

प्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारणभावेन प्रमेयत्वात्प्रमाणविषयकः प्रश्नः प्रमेयान्तर्गतत्वात्साध्यसमहेत्वाभासः। अस्य च प्रमाणविषयकप्रश्नस्य जगद्वृत्तिपदार्थान्तर्गतत्वाज्ज्ञेयत्वसिद्धिरिति ज्ञातत्वादङ्गीकृतमेव प्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात्। अतश्च तद्विषयकः प्रश्नः सर्वसाधारणप्रमेयत्वे सिद्धे व्यर्थ एव। तद्भेदाश्च यथाशास्त्रं द्वौ त्रयश्चत्वारोऽष्टौ वा, प्रमाणफलं च व्यवहारपरमार्थयोः सिद्धिः, तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च।

ह० भीमसेनशर्मणः ह० देवदत्तशर्मणः

भाषानुवादः—व्याकरण शास्त्र का यह नियम है कि जिसमें विभक्ति नहीं, ऐसे अपद शब्द का प्रयोग न करें। पद उसको कहते हैं जिसके अन्त में सुप् और तिङ् हो। इस कारण "प्रथमप्रश्न" यह शब्द व्याकरण से विरुद्ध होने से "प्रथमग्रासे मक्षिकापातः" के तुल्य लिखा गया है। (क्या इसी पाण्डित्य के आश्रय से जैनी लोग संस्कृत में शास्त्रार्थ करना चाहते थे? इस पर पं० मिहिरचन्द्र लिखते हैं—"एक विसर्गमात्र की अशुद्धि है", क्या व्याकरण में विसर्गमात्र की अशुद्धि कम होती है? कोई पण्डित किसी विद्यार्थी से बोले कि हम तुम्हारी परीच्छा करेंगे। विद्यार्थी ने कहा—महाराज! मेरी परीक्षा तो आप करेहींगे, पर आप की तो परीक्षा परीच्छा शब्द से पहिले ही हो गई। वही वृत्तान्त पं० मिहिरचन्द्र का हुआ, कि जिनको विसर्ग, व्यवहार, विषय आदि शब्दों में यह भी नहीं मालूम कि इनमें कौन वकार लिखना चाहिये। इससे इनकी भी परीक्षा होगई और सब को भी ज्ञात हो जावेगा। क्या इसी पाण्डित्य के भरोसे अपने को अर्थशास्त्रज्ञ होने का दम्भ करते हैं? अस्तु)

यदि जगत् में वर्त्तमान सब पदार्थों को प्रमेयत्व है, तो क्या जगत् में वर्त्तमान सब पदार्थों में 'प्रमाण' नहीं समझा जावेगा? जब जगत् के सब पदार्थों में प्रमाण भी एक पदार्थ होने से पदार्थत्व सामान्य से प्रमाण भी प्रमेयरूप में आगया, तो उसके भी प्रमेय होजाने से प्रमाण रहा ही नहीं, फिर उसका प्रश्न करना कभी ठीक नहीं है। जब प्रमाण को साध्य पक्ष में लेकर उसको निर्णय किया चाहते हो तो उसके निर्णय करने में जो कुछ प्रमाण कहोगे, वह सब साध्य पक्ष में आजाने से प्रमेय हो जायगा क्योंकि तुम सर्वसाधारण पदार्थों का प्रमेय कह चुके हो। तो तुम्हारा प्रमाणविषयक प्रश्न, भी सब पदार्थों के अन्तर्गत होने से जानने योग्य है। इससे तुम्हारा प्रश्न जाना हुआ नहीं रहा अर्थात् तुम्हारे प्रश्न को यदि तुम सब पदार्थों में मानते हो तो विचारणीय पक्ष में आगया।

यदि कहो कि हमको अपने प्रमाणविषयक प्रश्न में सन्देह नहीं, तो अपने प्रश्न को प्रमाणरूप मान लेने से तुमने प्रमाण को निश्चित समझ लिया, फिर प्रमाण में सन्देह न रहने से प्रमाण-विषयक प्रश्न नहीं बनता। यदि तुमको प्रश्न में भी सन्देह होता तो प्रश्न ही न कर सकते। अर्थात् संसार में जो कुछ व्यवहार होता है, वह सब प्रमाणपूर्वक है। जब भोजन करते हैं तब भी नेत्रादि से निश्चय कर लेते हैं कि यह अन्न है, इससे क्षुधा की निवृति होकर सुख होगा, इसलिये भोजन करें। यदि संदेह हो कि यह हमारे भोजन योग्य अन्न है वा नहीं, तो भोजन करना भी न बने। मनुष्य जिसको नेत्रादि प्रमाणों से अपने सुख का साधन समझ लेता है, उसको ग्रहण करता, और जिसको दुःख का हेतु जानता है, उससे सदा बचा करता है। इत्यादि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक होता है, तो तुम्हारा प्रश्न भी प्रमाणपूर्वक

होने से तुमने प्रमाण को जान लिया, फिर प्रमाणविषयक प्रश्न नहीं बन सकता। यद्यपि प्रश्न नहीं बनता, तथापि उत्तर देते हैं कि पृथक् २ शास्त्रकारों की शैली के अनुसार प्रमाण के भेद दो, तीन, चार और आठ हैं। प्रमाणफल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि है। उस प्रमाण का निश्चय स्वतः उसी से, और परतः अन्य से भी होता है।

## इस आर्यों के द्वितीय पत्र के उत्तर में जैनियों का तीसरा पत्रः—

जगद्वृत्तिपदार्थानां सर्वसाधारणं प्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारणभावेन प्रमेयत्वात् प्रमाणविषयकः प्रश्नः प्रमेयान्तर्गतत्वात्साध्यसमहेत्वाभासरिति भवद्भिरपरामर्शत्वेनोल्लेखोयं कृतः, कुतः प्रमाणस्य तु विषयीरूपत्वात् प्रमेयाणां विषयंरूपत्वाच्च प्रमाणरूपत्वेन प्रमाणस्य न प्रमेयत्वं अन्यथा लक्षणस्यापि लक्ष्याक्रान्तत्वेन दूषणगणवाणप्रहारपातात् किञ्च प्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात् तद्विषयकः प्रश्नः सर्वसाधारणप्रमेयत्वे सिद्धे व्यर्थ एव। एतदप्ययुक्तं कुतः यदि अस्मत्स्वीकृतं मतं प्रमाणं तर्हि भवन्तोप्यङ्गीकुर्वन्तु नोचेत्समायातो विचारः सोपि प्रमाणाधीनः अतः प्रमाणविषयकः प्रश्नः सार्थिकः किञ्च तद्भेदाश्च यथाशास्त्रं द्वौ त्रयश्चत्वारोऽष्टौ वा इदमप्यविशेषेण लेखनं कस्मिन्शास्त्रे इमे भेदाः केन प्रकारेण उद्दिष्टाः अपि च प्रमाणविषयो नोक्तः किं तर्हि अस्ति या

नवेति स्पष्टतयोल्लेखनीयं । प्रमाणफलं च व्यवहारपरमार्थयोः सिद्धिः इत्यनेनापि प्राप्तः प्रमाणनिर्णयः तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च इत्यनेनानैकांतको हेत्वाभासः निर्पेक्षतयोक्तत्वात् ।

ह० छेदालालजैनधर्मिणः ह० पन्नालालजैनमतानुयायिनः

भाषानुवादः—आपने यह कहा कि जगत् में वर्त्तमान पदार्थों को साधारण रीति से प्रमेयत्व है तो प्रमाण भी सब में आगया, इससे प्रमेय हुआ तो प्रमाणविषयक प्रश्न प्रमेयान्तर्गत होने से साध्यसमहेत्वाभास हुआ। यह आपका लिखना विना विचारे है, क्योंकि प्रमाण विषयिरूप और प्रमेय विषयरूप है, प्रमाणरूप से प्रमाण को प्रमेयत्व नहीं, अन्यथा लक्षण को भी लक्ष्यत्व होने से अनेक दूषण आजायेंगे। और यह भी आपका कहना अयुक्त है कि प्रमाणपूर्वक व्यवहार के करने से प्रमाण-विषयक प्रश्न सर्वसाधारण प्रमेय होने से व्यर्थ है, क्योंकि जो हमारे स्वीकृतमत को प्रमाण मानते हो तो अङ्गीकार करो, जो नहीं मानते हो तो विचार करने का अवसर आया, इससे प्रमाणविषयक हमारा प्रश्न सार्थक है। और उसके भेद शास्त्र के अनुसार दो २, तीन ३, चार ४, वा आठ हैं, यह लेख भी विशेषरहित संदेहरूप है, क्योंकि यह नहीं लिखा कि किन शास्त्रों में यह भेद है, और किस प्रकार से कहे हैं, और प्रमाणविषय नहीं कहा, वह है या नहीं, स्पष्ट कहो, और प्रमाण का फल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि कहा, सो इस आपके कथन से भी प्रमाण का निर्णय प्राप्त हुआ। और उसका प्रामाण्य स्वतः परतः होता है, इस आपकी उक्ति को निरपेक्ष होने से अनैकान्तिक अर्थात् व्यभिचारी हेत्वाभास की नांई स्वतः परतः की साधकता नहीं हो सकती।

विशेषः—जैनियों के इस पत्र में कई अशुद्धियां हैं, जैसे—१—हेत्वाभासरिति। २—विपर्यंरूपत्वात्। ३—लक्षाक्रान्तत्वेन। ४—सार्थिकः। ५—उद्दिष्ठाः। ६—नैकान्तकः। ७—भवंतोऽप्यंगीकुर्वंतु। इन तीन शब्दों में तीन अशुद्धि यां हैं। यदि कोई लिखने में अक्षर छूट जाता है तो उससे पण्डिताई में हानि नहीं समझी जाती, सो ऐसी अशुद्धि यहां नहीं गिनाई है। इन उक्त अशुद्धियों के अनन्तर इनके पत्र में अन्य भी अशुद्धियां हैं, जिनसे जैन पण्डितों की पण्डिताई प्रकाशित हो जावेगी।

## इसके आगे जैनियों के द्वितीय पत्र के उत्तर में आर्य्यों का तृतीय पत्रः—

सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वा। यदि प्रमाणपूर्वकत्वं तर्हि भवत्प्रश्नस्यापि सर्वव्यवहारान्तर्गतत्वात्संशयाभावेनानर्थकः प्रश्नः। यदि चाप्रमाणपूर्वकत्वं तर्हि भवत्प्रश्नस्यायोग्यत्वम्। यद्यस्मदुक्तपदार्थानां मेयत्वं भवद्भिः स्वीक्रियते तर्हि जिनपदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वाद्भावन्मतमूलमेव साध्यं न तु सिद्धमित्यतो भवदनुमतौ सर्वस्य साध्यत्वात् प्रमाणाभावेन प्रमेयाभावः।

ह० भीमसेनशर्मणः. ह० देवदत्तशर्मणः.

भाषानुवादः—सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक होता है वा अप्रमाणपूर्वक ?, अर्थात् सोच समझ के मनुष्य कार्य्य करने में प्रवृत्त होते हैं वा अन्धाधुन्ध उन्मत्त के समान ? यदि कहो कि प्रमाण से व्यवहार होते हैं, तो आपका प्रश्न भी सब व्यवहारों

में होने से प्रमाणपूर्वक हुआ, अर्थात् आपने अपने प्रश्न को प्रामाणिक माना, तो तुमको प्रमाण का बोध होगया, अर्थात् प्रमाण का बोध था तब ही तुम प्रश्न कर सके, तो प्रमाण में संदेह न होने से तुम्हारा प्रमाण विषय में प्रश्न करना सर्वथा व्यर्थ हुआ। यदि कहो कि बिना प्रमाण के व्यवहार होते हैं, तो तुम्हारा प्रश्न भी अप्रामाणिक होने से अयोग्य है। और यदि हमारे प्रथमपत्र में लिखे जिन जैनादि पदार्थों को तुम प्रमेय अर्थात् विचारपक्ष में लाने योग्य मानते हो, तो जिनपद और उसके वाच्यार्थ के साध्य होने से तुम्हारे कथनानुसार ही तुम्हारे मत का मूल साध्य होगया, किन्तु सिद्ध नहीं रहा।

इससे यह आया कि तुमको अपने जैनमत पर विश्वास नहीं, यदि विश्वास होता तो उसको प्रामाणिक मानते। जब प्रामाणिक मान लेते तो प्रमाणविषय में संदेह न होने से प्रश्न क्यों करते? जब तुमको अपने मत के प्रामाणिक होने का विश्वास नहीं, तो अन्य मत पर कैसे विश्वास हो सकता है? इसलिये तुम्हारे मत में सभी साध्य होने से प्रमाण कोई वस्तु न रहा, क्योंकि प्रमाण वही कहाता है, कि जिससे विषय का निश्चय हो, और जिस विषय को उस प्रमाण से निश्चय करें, वह प्रमेय कहाता है, सो जब प्रमाण ही न रहा तो प्रमेय का ठहना भी दुस्तर है।

विशेष:—यह पहिले दिन ता० १६ मार्च का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। सब अपने २ घर को चले गये। उसी दिन आर्य्यों को चिन्ता रही कि अब कल कब शास्त्रार्थ होगा। उसका समय पहिले से नियत होना चाहिये। परन्तु जैन लोगों को कुछ भी फिकर न थी। और पहिले दिन के शास्त्रार्थ से जैनियों को तथा अन्य श्रोताजनों को बलाबल भी ज्ञात हो गया था, इससे जैनियों की भीतरी इच्छा नहीं थी कि दूसरे दिन शास्त्रार्थ हो। पर अपनी ओर से बन्द करने में भी प्रसिद्ध पराजय हुआ

जाता था, क्योंकि जैनियों के प्रतिपक्षी आठों प्रहर कटिबद्ध हो रहे थे। इस कारण आर्यों की ओर से कई बार संदेशा जाने से जैनी लोगों को ता० १७ को शास्त्रार्थ स्वीकार करना पड़ा और ता० १७ को भी उसी समय से शास्त्रार्थ का आरम्भ हुआ। पर ता० १६ को आर्य्यों ने जो तीसरा पत्र अन्त में दिया था, उसका उत्तर जैनियों को देना था, और जैनियों के तृतीयपत्र का उत्तर आर्यों को देना था। आर्यों का पत्र जैन ले गये थे और जैनियों का पत्र आर्य ले गये थे और अपने २ घर विचारपूर्वक उत्तर लिखकर लाये। जैनियों को उत्तर लिखने के लिये घर पर अन्य मतावलम्बी पण्डित लोगों की सहायता मिल गई, जिससे अच्छे प्रकार लिखा।

## द्वितीय दिन ता० १७ मार्च

## आर्य्यों के तृतीय पत्र के उत्तर में जैनियों का चौथा पत्र

श्रीमद्भिः यदुक्तं सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तं। नायं नियमः सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वा कस्मात् व्यवहाराणां वैलक्षण्यात्। प्रश्नस्यानर्थक्यन्तु वक्तुमसक्यं। येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यात्। नास्माकं प्रमाणस्वरूपादौ संशयः। यूयं जानीथ नवेति पृच्छते। अस्मत्प्रश्नविषयस्य सर्वशास्त्रसंमतत्त्वेन नायोग्यत्वं। अस्मन्मतविषये भवज्जिज्ञासितपदार्थानां यथा मेयत्वं तथा सर्वेषां पदार्थमात्राणां मेयत्वमस्माभिरंगीक्रियते परन्तु यन्मेयं

तत्साध्यमिति न व्याप्तेरभावात् इत्यनेन यद्यस्मदुक्तपदार्थाना-म्मेयत्वं भवद्भिः स्वीक्रियते तर्हि जिनपदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वाद्भवन्मतमूलमेव साध्यं न तु सिद्धमित्युक्तं तदपि निर्मूलं। अपि च मेयं च किं प्रमाणाधीनमिति प्रश्नावकाशः। अन्ततो गत्वा भवद्भिरपि प्रमाणाभावेन प्रमेयाभावः इति लेखकृद्भिः प्रमाणं त्वंगीकृतं परन्तु पृष्ठसविशेषप्रमाणस्वरूपा-दिकम् वक्तुमसमर्थाः इत्यस्माभिरवगतम्।

ह० छेदालालजैनधर्मिणः. ह० पन्नालालजैनधर्मिणः.

भाषानुवादः—आपने जो कहा कि सब व्यवहार प्रमाण-पूर्वक हैं या अप्रमाणपूर्वक, यह आपका कहना अयोग्य है क्योंकि यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक ही होते हैं या अप्रमाणपूर्वक क्योंकि व्यवहार विलक्षण हैं अर्थात् कोई प्रमाणपूर्वक कोई अप्रमाणपूर्वक होते हैं तो। और हमारे प्रश्न को तो अनर्थक आप नहीं कह सकते क्योंकि जिस व्यवहार को प्रमाणपूर्वकता है, वह प्रमाण क्या, इससे हमारा प्रश्न सार्थक है और हमको तो प्रमाण के स्वरूपादि में संशय नहीं है। पूछते इसलिये हैं कि आप भी उसको जानते हैं या नहीं। हमारे प्रश्न का विषय सम्पूर्ण शास्त्रों का सम्मत इससे अयोग्य नहीं है। हमारे मत के विषय में जिन पदार्थों के जानने की आपकी इच्छा है, वे जैसे प्रमेय हैं, उसी रीति से हम सम्पूर्ण पदार्थों को प्रमेय मानते हैं। परन्तु जो मेय है, वह साध्य अवश्य होता है, यह नहीं कह सकते क्योंकि व्याप्ति का अभाव है। इसी लेख से आपने कहा कि जो हमारे कहे हुए पदार्थों को तुम प्रमेय मानते हो तो जिन पद और उसका अर्थ भी

साध्य हुआ, इससे तुम्हारे मत का मूल साध्य है सिद्ध नहीं, यह आपका कहना भी निर्बल है और मेय किस प्रमाण के आधीन है, इससे हमारे प्रश्न का अवकाश है और अन्त में आपने भी प्रमाण के बिना प्रमेय का अभाव होता है, यह लिख कर उस प्रमेय की सिद्धि का कारण तो प्रमाण को माना परन्तु हमारे पूछे हुए प्रमाण के पृथक् २ स्वरूप आदि को आप कहने को समर्थ नहीं, यह हमने जान लिया।

विशेष:—यह पत्र लिख कर लाये और जैनियों ने सभा के आरम्भ होते ही सब की सम्मति से सभा में सुनाया और कितनी ही बातें अपनी इच्छानुसार ऊपर से कहीं। पीछे आर्य्यों की ओर से पण्डित देवदत्त शास्त्रीजी ने भी अपना लिखा उत्तर सुनाया और कुछ उस पत्र के संबन्ध में कहा। इस पर छेदालाल जैन ने फिर खड़े होकर कहा, इस पर भीमसेन शर्मा ने कहा, जैनियों को सभा के आरम्भ में कहने के लिये समय दिया गया, इस पर तो जैनी प्रसन्न थे, पर जब आर्य्य पण्डित बोल चुकें तब फिर भी पीछे बोलना चाहें। तब आर्य्य पण्डितों ने कहा कि तुम जितनी बार बोलोगे, उतनी ही बार हम तुम्हारे पीछे अवश्य बोलेंगे। अन्त में यह हुआ कि दूसरे दिन अन्त में आर्य्य पण्डितों ने उनके उत्तर देकर जैनमत की पोल खोलने का प्रारम्भ किया (जिसको प्रमाण प्रमेय का झगड़ा डाल के अपने मत की गोलमाल पोलपाल को दबाते थे कि हमारे मत पर विचार न चलने पावे)। तब तो जैनियों के मुख पर सफेदी आने लगी। इस दूसरे दिन के शास्त्रार्थ को जैन पण्डितों ने इस विचार से बोल चाल अर्थात् लिखा पढ़ी न होकर भाषा में बोलने में टाला था कि हमारे संस्कृत की अशुद्धियां सभा में प्रकट हो चुकीं, फिर लिखेंगे तो और भी अशुद्धियां निकलने से विशेष धूर होगी। इसलिये भाषा में बोलकर समय पूरा करें, परन्तु आर्य्यों की इसमें भी चढ़ बनी अर्थात् प्रमाण विषय में यथावत् वर्णन किये पीछे जैनमत की अच्छे प्रकार सभा को पोल दिखाई।

पहले दिन के शास्त्रार्थ से जैनियों ने अपने मत की हानि देखकर शास्त्रार्थ के स्वीकारकर्त्ता जैनपक्षी सेठ फूलचन्दजी को अनेक जैनों ने जा २ कर धमकाया और कहा तुमने यह रोग हमारे और अपने पीछे क्यों लगा दिया ? हमारा मत जैसा है वैसा मानते हैं। इस प्रकार अनेक जैनियों ने फूलचन्दजी को लज्जित किया। इससे सेठ फूलचन्दजी दूसरे ही दिन से बीमार होकर घर में पड़ रहे और दूसर दिन से सभा में नहीं आये। इस बात का अनेक सज्जनों को पूरा अनुभव हो चुका है कि जैन लोग अपने मत की चर्चा से ऐसे डरते हैं कि जैसे कोई काल से डरे। इससे प्रकट है कि जैनियों के मत में अत्यन्त पोल है।

इस दूसरे दिन के शास्त्रार्थ में प्रथम जैनियों ने अपना पत्र सुनाया, तत्पश्चात् आर्यों ने चौथा पत्र सुनाया—

## आर्यों का चौथा पत्र जैनियों के तृतीयपत्र के उत्तर में:—

॥ ओ३म् ॥

तृतीयसङ्ख्याके पत्रे नवाशुद्धयः प्रतीयन्ते ताश्च शब्द-शास्त्रबोधाभावेन जाता इति निश्चितमेव। इदञ्च तृतीयपत्रं पूर्वमेव दत्तोत्तरम्। पुनश्च तदुपरि लेखः पिष्टपेषणवत्प्रति-भाति। तथापीदं ब्रूमः। यदि विषयिरूपस्य प्रमाणस्य स्वस्वरूपादचाञ्चल्यं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां विषयिरूपत्वं विषयरूपत्वं वा किं भवद्भिरङ्गीक्रियते ? यदि विषयिरूपत्व-मूरीक्रियते तन्न, युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात्, इति पूर्वलेखेन विरुध्यते। यदि च विषयरूपत्वं तर्हि जिनजैना-

दिपदार्थानां साध्यत्वात् भवन्मतमूलं युष्माभिरेवाप्रमाणीभूतं स्वीकृतमिति निग्रहस्थानप्राप्तिः। अस्मन्मते तु प्रमाणस्य प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेति मत्वा न कश्चिद्दोष इति। इदानीं च प्रमाणविषयको विचारः समाप्त इति भवत्प्रश्नस्यावकाशाभावः।

अस्माभिश्चादौ यः प्रश्नः कृतोऽस्ति तस्योत्तरं भवद्भिः किमपि नो दत्तं, तस्योपरि विचारः सर्वस्मात् पूर्वं कर्त्तुं युक्तस्तस्य प्रयोजनरूपेण निमित्तीभूतत्वात्। जैनमतमूलं सप्रमाणकमप्रमाणकं वेत्यादिविचारे प्रवृत्ते जैनमतसमीक्षणं प्रमाणेनैव भविष्यतीति प्रमेयरूपाज्जैनसम्प्रदायात्पूर्वं प्रमाणं सेत्स्यत्येवेति। तत्रेदं विचार्यते---यदि जिनपदार्थः कश्चित्सनातनः सर्वज्ञो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो नित्यैश्वर्यसम्पन्नस्तर्हि तस्यैव सनातनसर्वनियन्त्रीश्वरस्य सिद्धावनीश्वरवादो निरस्तः। यदि च कश्चित्कालविशेषोत्पन्नो जिनपदार्थाभिधेयस्तर्हि तस्याधुनिकस्यानित्यत्वात्सर्वज्ञत्वादिगुणासम्भवेन तदुपासनमश्रेयस्करमित्यादयो दोषाः।

ह० भीमसेनशर्मणः, ह० देवदत्तस्य.

भाषानुवादः—तीसरे पत्र में नव अशुद्धि निश्चित हुई हैं, सो जैनियों के तीसरे पत्र के नीचे दिखा चुके हैं। वे अशुद्धियां व्याकरण का बोध न होने से हैं, यह निश्चित ही है। यद्यपि इस तृतीयपत्र में जो विषय है, उसका उत्तर हम पहिले ही दे

चुके हैं कि प्रमाण उस वस्तु का नाम है जिससे विषय को जाने, यदि वह जानने योग्य विषय हो जायगा तो उसको प्रमेय कहेंगे, प्रमाण नहीं कह सकते। फिर प्रमाण का निश्चय करना चाहिये, यह कथन नहीं बन सकता क्योंकि जो स्वयं प्रकाशस्वरूप हो और अन्य पदार्थ उसके प्रकाश से देखे जावें, वह प्रमाण कहाता है। जैसे एक दीपक से अन्य पदार्थ देखे जाते हैं परन्तु उसी दीपक के देखने के लिये द्वितीय दीपक की अपेक्षा नहीं होती, ऐसे ही प्रमाण वही है जिसको सिद्ध करने की अपेक्षा नहीं, किन्तु वह स्वयंसिद्ध है।

कहीं २ किसी प्रमाण का निश्चय करना पड़ता है, तब उसको प्रमेय कहते हैं किन्तु वह प्रमाण कोटि में नहीं कहाता। जब कोई मनुष्य किसी विषय को विचारना वा देखना चाहता है तब वह पहिले अपने नेत्र को निश्चय नहीं करने बैठता कि मेरे कै नेत्र हैं, कैसे हैं, मैं देख सकता हूँ वा नहीं तथा न्यायाधीश जब न्यायालय में न्याय करने को उद्यत होता है, तब वह यह नहीं विचारता कि जिस कानून से मैं न्याय करूंगा, उसी को पहिले निश्चय करलूं कि वह कानून ठीक है वा नहीं, किन्तु कानून के अनुसार न्याय करने लगता है। ऐसे ही मत विषय पर विचार होना चाहिये। प्रमाण के निर्णय की कुछ आवश्यकता नहीं है। यह आशय पूर्व ही प्रकाशित किया गया था। इसलिये इस पर बार २ लिखना पिसे को पीसना है।

तथापि यह कहते हैं कि—यदि विषयिरूप प्रमाण अपने स्वरूप से चलायमान नहीं होता तो जिनजैनादि पदार्थों को आपने विषयरूप माना वा विषयिरूप माना है? इन दोनों में आप क्या ठीक समझते हो? यदि कहो कि जिनजैनादिकों को विषयिरूप प्रमाण मानते हैं, तो ठीक नहीं क्योंकि आप

पहिले लिख चुके हो कि तुम्हारे कहे जिनजैनादि पदार्थ प्रमेय-रूप विषय हैं, इससे पूर्वापर वदतोव्याघात हो जायगा। यदि विषयरूप प्रमेय मानते हो तो जिनजैनादि पदार्थों के साध्य होने से तुम्हारे मत के मूल को तुमने ही अप्रमाण मान लिया। इससे तुम्हारा पक्ष पराजय स्थान में पहुंच गया। हमारे मत में तो प्रमाण-निश्चय स्वतः और परतः दोनों प्रकार होता है, इससे कोई दोष नहीं आता।

अब इस पूर्वोक्त सब कथन से प्रमाणविषयक विचार समाप्त हो गया क्योंकि तुमने पूछा था सो सब समझा दिया गया। यदि इतने पर भी न समझो तो कुछ दिन विद्वानों की सेवा करो और पढ़ो, तब प्रमाणविषय को पूछना। परन्तु तुमने जैन मत को ग्रहण किया तो उसको कुछ अच्छा समझ लिया होगा, इस लिये हमको जो तुम्हारे जैनमत में शङ्का है, उन प्रश्नों का उत्तर दीजिए। हमारे पहिले प्रश्न का उत्तर तुमने अब तक नहीं दिया और हम आप के प्रमाणविषयक उत्तर बराबर देते आते हैं। ऐसे कहां तक टालोगे। हमारे किये प्रश्न पर सब से पहिले उत्तर होना चाहिये क्योंकि सब प्राणिमात्र तथा विशेष मनुष्यों का यही प्रयोजन है कि हमको सुख मिले और दुःखों से छूटें। किसी मनुष्य को पूछिये सभी कहेंगे कि यदि कोई कल्याण का मार्ग ठीक २ समझा देवे तो सर्वोत्तम है क्योंकि सुख की प्राप्ति ही मुख्य प्रयोजन है। सुख की प्राप्ति अर्थात् मनुष्य का कल्याण-कारी कौन मत है ? यही हमारा प्रश्न है। इसका उत्तर अब तक जैनियों ने नहीं दिया।

जैनमत पर जब परीक्षा चलेगी कि जैनमत प्रमाणयुक्त वा अप्रमाण है, इत्यादि विचार होने में जैनमत की समीक्षा प्रमाण से होगी, तो प्रमेयरूप जैन सम्प्रदाय से प्रमाण पहिले स्वयमेव

सिद्ध हो जायगा। इसलिये प्रथम जैनमत पर विचार होना चाहिये। उस जैनमत पर इस प्रकार विचार चलना चाहिये कि यदि जिन पदार्थ कोई सनातन, सर्वज्ञ, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त-स्वभाव और अविनाशी ऐश्वर्यवाला है, तो यही सनातन सर्वनियन्ता ईश्वर सिद्ध हो जायगा। ऐसा होने से अनीश्वरवाद स्वयमेव कट जायगा। यदि कोई काल विशेष में सर्वज्ञ होने से उत्पन्न जिन पद का वाच्यार्थ होगा, तो उस आधुनिक जिन के अनित्यत्वादि गुणों का आरम्भ है। क्योंकि जो किसी समय-विशेष में उत्पन्न होता है, वह अपनी उत्पत्ति से पहिले होगये समाचारों को नहीं जान सकता, ऐसा हो तो तव पिता के जन्म के समाचार को पुत्र भी प्रत्यक्ष कर लेवे, सो असम्भव है। इसलिये किसी समय विशेष में उत्पन्न हुआ पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता। फिर ऐसे अल्पज्ञ जिन की उपासना कदापि कल्याणकारिणी नहीं हो सकती। इसलिये यह जैन संप्रदाय अनेक दोषों से ग्रस्त होने के कारण ग्राह्य नहीं हो सकता।

विशेषः—इस प्रकार द्वितीय दिन आर्यों ने अपना पत्र सुनाकर जैनों को दिया, और जैनियों ने पूर्वोक्त अपना पत्र सुनाकर आर्यों को दिया तथा कुछ भाषा में अपने २ पक्ष की ओर से दोनों पक्ष के पण्डितों ने कहा। पश्चात् द्वितीय दिन का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। इस दिन भी शास्त्रार्थ होने के बाद जैनियों की इच्छा नहीं थी कि अब फिर शास्त्रार्थ हो परन्तु आर्य लोग कब मानते थे, उन्होंने ता० १७ को संध्या से बार २ संदेश भेजकर फिर जैनियों को खटखटाया कि कल ता० १८ को किस समय से शास्त्रार्थ होगा। और आर्यों की ओर पं० ठाकुरप्रसाद शास्त्रीजी आगरे से आगये थे, इस पर कई लोगों का विचार ठहरा कि पं० ठाकुरप्रसादजी आर्यों की ओर से बोलें। और विशेषकर श्रीमान् लाला सोहनलालजी रईस फ़ीरोज़ाबाद की इच्छा थी कि पं० ठाकुरप्रसादजी बोलें तो ठीक हो।

अगले दिन ता० १८ को १ बजे से शास्त्रार्थ होना नियत हुआ। सब लोग नियत समय पर सभा में पहुँचे। प्रथम पं० ठाकुरप्रसादजी शास्त्री को नियत करने का विचार चला। इस पर जैनियों ने बहुत वादविवाद चलाया। उनकी इच्छा थी कि वादविवाद में समय कट जावे तो ऐसे ही फंद से छूटें, वा आर्य्य लोग यह कह देवेंगे कि पं० ठाकुरप्रसादजी को न बोलने देओगे तो हम शास्त्रार्थ नहीं करेंगे, तो भी हमारा कार्य सिद्ध हो जावे। सो आर्यसमाजस्थ उनको कब छोड़ते थे। अन्त में अनेक वादविवाद एक घण्टा तक होने के पश्चात् दो बजे शास्त्रार्थ का प्रारम्भ हुआ।

## [ तृतीय दिन ता० १८ मार्च ]

## आर्यों के चौथे पत्र के उत्तर में जैनियों का पांचवां पत्रः—

यच्च पूर्वपत्रे भवद्भिरुटङ्कितं न लिखितप्रश्नानामुत्तरन्तु जातं भूयपिष्टपेषणवन्नूमइति तन्न सम्यक् प्रमाणस्वरूप· निश्चितसङ्ख्ययोरभिमतप्रमाणलक्षणानां कस्मिंश्चिदपि पत्रे लेखनाभावान्नहि तुलामन्तरेण वस्तुपरिमाणमुपलभ्यते तत् प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेत्यशिरस्कवचनं ब्रुवाणैर्युष्माभिः क्रोडीकृतः प्रमाणविषयको विचारश्चरमवर्णध्वंसगत इति। तदपि चित्रंखपुष्पमितिवत्प्रतीयमानत्वात् नहि किञ्चित्पदार्थापेक्षया स्वतः परतइत्यङ्कितं युष्माभिरतोविरहादतिसाहसमात्रमेतत्कथनमिति पश्यामः किं पुनर्बहुविडम्बनेन। यच्च ( यदि विषयिरूपस्य प्रमाणस्य स्व स्व रूपादचाञ्चल्यं तर्हि जिनजैना-

दिपदार्थानां विषयिरूपत्वंविषयरूपत्वं वा किं भवद्भिरंगीक्रियते यदि विषयिरूपत्वमुरीक्रियते तन्न युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात् इतिपूर्वलेखेन विरुध्यते यदि च विषयरूपत्वं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां साध्यत्वाद्भवन्मतमूलं युष्माभिरेवाप्रमाणीभूतं स्वीकृतमिति निग्रहस्थानप्राप्तिरिति ) तदपिवालभाषितं आम्राणां प्रश्ने कोविदारमाचष्ट इतिवत् प्रमाणनिरूपणावसरे भिन्नजिनजैनादिनां विषयविषयित्वनरूपणात् नहि साध्यो विषयो भवितुं नार्हतीति यत्र २ साध्यस्तत्र २ विषयोनेति व्यप्तेरभावात् । किञ्च जिनमतंसप्रमाणमस्माकं परन्तु जिनमतंप्रमाणमप्रमाणं वेति विकल्पे प्रमाणपदस्य कः पदार्थो येन जिनमतं युष्माभिः दृढं कारयिष्यामः नित्यत्वानित्यत्वादिकं च प्रमाणाधीनमिति भवद्भिः सविशेषप्रमाणादिः पूर्वं कथनीयः ।

ह० पन्नालालजैनधर्मिणः. ह० छेदालालजैनधर्मिणः.

भाषानुवादः—जो पहिले पत्र में आपने कहा कि आपके लिखे प्रश्नों का उत्तर दे चुके, फिर पिष्टपेषण के समान कहैं, सो आपका कहना ठीक नहीं। प्रमाण का स्वरूप और निश्चित संख्या और शास्त्रकारों के माने हुए लक्षणों को किसी पत्र में भी आपने नहीं लिखा। तुला के विना वस्तु का परिमाण नहीं जाना जाता और उस प्रमाण की प्रमाणता स्वतः परतः इस विना शिर के वचन को कहनेवाले आपने स्वीकार किया कि प्रमाणविषयक विचार पूरा हुआ। यह भी अत्यन्त आश्चर्य है, क्योंकि

यह कहना आकाश के फूलों के समान है, काहेते कि आपने यह नहीं कहा किस पदार्थ की अपेक्षा से स्वतः और किसकी अपेक्षा से परतः, इस युक्ति के विना इस आपके कथन को अतिसाहसपूर्वक समझते हैं। बहुत विडम्बना से क्या है। और आपने यह कहा कि विषयिरूप प्रमाण अपने स्वरूप से चंचल नहीं, तो जिनजैनादि पदार्थों को तुम विषयिरूप मानते हो कि विषयरूप, जो विषयिरूप मानते हो सो ठीक नहीं, क्योंकि आपके कहे पदार्थों को प्रमेयरूप होने से इस पूर्व लेख के संग विरोध है और जो विषयरूप मानते हो तो विनजैनादि पदार्थों के साध्य होने से अपने मत का मूल आपने ही अप्रमाण स्वीकार किया, यह निग्रहस्थान की प्राप्ति है, यह आपका कहना भी वालक अर्थात् अज्ञानी का सा है, क्योंकि पूछे आम बताये अमरूद, इसके समान प्रमाणनिरूपण समय में जिनजैनादि का विषयविषयित्व वर्णन करते हो। और यह नियम नहीं कि साध्य विषय न होसके, क्योंकि जहां २ साध्य वहां २ विषय नहीं, यह व्याप्ति नहीं। और हमको तो जैनमत प्रमाणसिद्ध है, परन्तु जिनमत प्रमाण है या अप्रमाण है, इस आपके विकल्प में प्रमाण पद का क्या अर्थ है, जिससे आपको जिनमत की दृष्टिता करावें। और नित्य अनित्य का ज्ञान भी प्रमाण के आधीन है, इससे तुम पहिले प्रमाण के स्वरूपादि कहो।

## आर्य्यों का पांचवां पत्र जैनियों के चौथे पत्र के उत्तर में :—

जैनानां पूर्वपत्रे व्याकरणानुसारतो दिगशुद्धयः। श्रीमद्भिः सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तमिति

प्रतिज्ञातम् । एतद्वाक्यान्तर्गतमयुक्तमिति सिषाधयिषितम् । व्यवहाराणां वैलक्षण्यादिति हेतुना । अत्रायं प्रश्नः—व्यवहार-वैलक्षण्यरूपहेतोः प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तमिति वाक्यघटितायुक्तत्वरूपसाध्यस्य च क्व व्याप्तिरस्ति, किं पुरुषोऽयुक्तत्वरूपसाध्याभावविशिष्टविलक्षणव्यवहारे न प्रवर्त्तते ? दृश्यते च सर्वेषाम्पुरुषाणां निष्टङ्का सर्वत्र प्रवृत्ति-स्तत्रायुक्तत्वरूपसाध्याभावेन व्यवहारवैलक्षण्यरूपहेतोश्च सत्वे-नायुक्तोयं हेतुः । निरवच्छिन्नमूलधूमसत्त्ववह्नेरवश्यं भावनियमात् । किञ्च व्याकरणशास्त्रोक्तदिशानेकाशुद्धिग्रस्तत्वेन पूर्वापरविरोधसद्भावेन चात्यन्त उपेक्ष्यो भवतां लेखः । अशुद्धीनामनेकत्वात् ताश्च समयान्तरे प्रदर्शयिष्यामः । विरोधश्चायं येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यादिति वाक्ये तत्प्रमाणं किमिति वाक्येन प्रश्नः कृतः, लिख्यते चाग्रे नास्माकम्प्रमाणस्वरूपादौ संशय इति रात्रिन्दिवयोरिवात्यन्तविरोधाक्रान्तत्वात् । अपि च सर्वे व्यवहाराः प्रमाणनिर्णयमकृत्वैव प्रवर्त्तन्ते, नायं नियमः । प्रमाणानि च शास्त्रज्ञानवतां प्रमाणत्वेन ज्ञातानि शास्त्राज्ञानवताञ्च प्रमाणत्वेनाज्ञातान्यपि व्यवहाराप्रतिबन्धकानि भवन्तीति सम्मतम् । प्रमाणनिर्णयमनधिगम्यापि प्रवर्त्तन्ते च विद्वांसः प्राकृताश्च जना हट्टादिषु क्रयविक्रयव्यवहारे । भवद्भिरपि कति प्रमाणानि कानि च तेषां लक्षणानीति निर्णयमकृत्वैव पत्रलेखनं कृतं,

ततश्च सिद्धमेतत् यद्वादिनोः सभायां मतप्राबल्यदौर्बल्याभ्यां जयपराजयौ निश्चीयेते। अथ तत्रैव चेदाग्रहः सभायामागत्य तद्विषयकाः प्रश्नाः क्रियन्तामित्यलं सुत्सु।

ह० भीमसेनशर्मणः ह० देवदत्तशर्मणः

भाषानुवादः—आपने यह प्रतिज्ञा की कि यह बात अयुक्त है कि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक या अप्रमाणपूर्वक होते हैं, इस में अयुक्त साध्य है, और व्यवहारों में वैलक्षण्य हेतु है। इसमें यह प्रश्न है कि व्यवहारवैलक्षण्य हेतु की और अयुक्तत्वरूप साध्य की कहां व्याप्ति है। क्या मनुष्य अयुक्तत्वरूप साध्य से विलक्षण व्यवहार में नहीं प्रवृत्त होता? सब मनुष्यों की सब जगह निःशंक प्रवृत्ति देखते हैं। वहां अयुक्तत्वरूप साध्य नहीं और व्यवहारवैलक्षण्यरूप हेतु है, इससे हेतु है अयुक्त है। जहां पर्वत के मूल से आकाश तक धूम हो वहां वह्नि के अवश्य होने का नियम है। और व्याकरण की रीति से अनेक अशुद्धि और पूर्वापर विरोध होने से आपका लेख अत्यन्त उपेक्षा करने योग्य है। वे अशुद्धि कालान्तर में दिखावेंगे। और विरोध यह है कि जिससे व्यवहारों को प्रमाणपूर्वकत्व है, वह प्रमाण क्या, इससे प्रश्न सार्थक है। इसमें 'वह प्रमाण क्या' इस वाक्य से प्रश्न किया और आगे जाकर लिखा कि हमको प्रमाण स्वरूपादि में संशय नहीं, सो यह रात्रि दिन के समान अत्यन्त विरुद्ध है।

और यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाण निर्णय के विना किये ही प्रवृत्त हों। और शास्त्रज्ञान वालों को प्रमाणरूप से जाने हुए और शास्त्र के अज्ञानियों को प्रमाणरूप से नहीं जाने हुए भी प्रमाण व्यवहार के प्रतिबन्धक नहीं होते, यह

सम्मत है। और प्रमाणनिर्णय के विना किये भी विद्वान् और हट्ट आदि के लेने देने में प्राकृत जन प्रवृत्त होते हैं। तुमने भी कितने प्रमाण और उनके क्या लक्षण यह निर्णय किये विना ही पत्र लिखा। इससे यह बात सिद्ध हुई कि वादियों के मत की प्रबलता और दुर्बलता से ही जयपराजय का निश्चय होता है। जो उसी प्रमाण निर्णय में आग्रह है, तो सभा में आनकर उस विषयक प्रश्न करो, विद्वानों में इतना बहुत है।

विशेष:—यह उक्त पत्र सभा में सुनाया गया और जैन मत पर कुछ विशेष कहा गया। तब पं० छेदालाल जैनी ने श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वती-जीकृत सत्यार्थप्रकाश को लेकर कोई २ दोष दिखाये और कहा कि हमारे मत विषय में सब मिथ्या लिखा है। 'सर्वदर्शनसंग्रह' के पुस्तक में कुछ दिखाया कि यह जैन मत नहीं है, इत्यादि कहा। उसका यथोचित उत्तर दिया गया। जो २ वार्त्ता विना लिखी हुई है, उन सबको यथावत् कोई नहीं कह सकता, इसलिये सबका लिखना उचित नहीं है। यदि एक वचन वा प्रमाण का स्मरण हुआ और उसके सम्बन्ध की सब युक्ति वा प्रमाण लिखे जावें तो बहुत लेख बढ़ जावे। और ऐसा लेख करना उचित भी नहीं जान पड़ता है, इसलिये विशेष बढ़ाना ठीक नहीं।

( इस दिन भी शास्त्रार्थ होने के बाद जैनियों की इच्छा नहीं थी कि अब फिर शास्त्रार्थ हो, परन्तु आर्य लोग कब मानते थे ) इस प्रकार १८ तारीख को ४ बजने में ५ मिनट शेष रहे, उस समय में शास्त्रार्थ का सारांश और जैन पण्डितों की कुटिलता पर और जैनमत की समीक्षा पर आर्य पण्डित कह रहे थे, उसको सुनकर जैन बहुत लज्जित हुए और उच्चस्वर से कहने लगे कि समय हो गया। इस पर श्रीमान् चतुर्वेदी राधामोहनजी और श्रीमान् राय सोहनलालजी ने कहा कि अभी समय बाकी है, हल्ला न करो। श्रीमान् चतुर्वेदी कमलापतिजी ने सम्पूर्ण शास्त्रार्थ द्रष्टा और विशेष कर राय सोहनलालजी की पूर्ण इच्छानुसार श्रीमान्

पण्डित ठाकुरप्रसादजी के व्याख्यान होने के लिये सभा से निवेदन किया। इन जैन लोगों ने किसी की एक न सुनी और एक साथ सभा से उठकर चल दिये। ( इससे शहर के प्रतिष्ठित रईसों को भी इनकी योग्यता अच्छे प्रकार प्रकट हो गई। सभा में कोलाहल मचजाने से वहां व्याख्यान न हुआ। तात्पर्य्य यह था कि इस दिन इनकी पोल अच्छे प्रकार खोली गई, कुछ शेष रही थी, यदि बैठे रहते तो सभी इनकी पोपलीला प्रकट हो जाती। ) आर्य लोग भी अपने २ घर आये।

सर्वसम्मत्यनुसार श्रीमान् रायसाहब सोहनलालजी के स्थान पर ता० १८ को संध्या के ७ बजे पं० ठाकुरप्रसादजी शास्त्री का व्याख्यान जैन-मत विषय पर ठहरा। तदनुसार सब नगर में विज्ञापन दिये गये, नियत समय पर व्याख्यान हुआ। नगर के सभ्यों को बड़ी प्रसन्नता हुई। पण्डित जी ने न्याय आदि शास्त्रों से जैनमत की अच्छे प्रकार समीक्षा की।

सभा की समाप्ति में पं० सीताराम चतुर्वेदी मैनपुरी निवासी ने आर्यों की प्रशंसा कविताई में पढ़ी—

॥ ओ३म् ॥

दोहा—सत्यासत्य विचारहित, भये विज्ञ एकत्र।<br>
वाक्यामृत की वृष्टि करि, सन्तोषे जन तत्र॥

## ( कवित्त )

ईश अवराधक, शुभसत्यता प्रकाशक,<br>
अवगुणादि नाशक, सुशासक विज्ञान के,<br>
देशगति सुधारैं, वेदसम्मत प्रचारैं,<br>
वाक्य उचित उचारैं, नहिं ग्राहक धनदान के।

विद्यानुरागी, असत्य मत त्यागी,
ऐसे बड़भागी, हितचिन्तक प्रजान के,
सीताराम पुलकित ह्वै, पुनि २ धन्यवाद देत,
कहां लगि गाऊं गुण, आर्य्यमहान् के ॥

आपका शुभचिन्तक—
सीताराम चतुर्वेदी,
मैनपुरी.

और उसी दिन अनेक आर्य लोगों ने नगर में जहां तहां व्याख्यान देना प्रारम्भ किया । इस व्याख्यान के पश्चात् आर्य लोगों को फिर वही चिन्ता लगी कि ता० १९ को कब से शास्त्रार्थ होगा । इसलिये एक पत्र सेठ फूलचन्दजी के नाम भेजा—

॥ ओ३म् ॥

सेठ फूलचन्दजी योग्य—आप कृपा करके बहुत शीघ्र उत्तर दीजिये कि कल शास्त्रार्थ का आरम्भ किस समय से होगा । प्रभात समय शास्त्रार्थ का निश्चय होने में बड़ी हानि होती है, इससे अभी शास्त्रार्थ का समय निश्चय करके सूचित कीजिये ।

रात्रि ८ बजे, प्र० चैत्रसुदी ६ रवौ
१८–३–८८

द० गङ्गाराम,
मन्त्री, आर्य्यसमाज
फ़ीरोज़ाबाद

इस पत्र का उत्तर सेठजी ने कुछ नहीं दिया । और अनेक लोगों से जैनों की अन्तरङ्ग चर्चा सुनी गई कि अब जैन शास्त्रार्थ करना नहींचाहते ।

## तब ता० १६ को प्रातःकाल एक पत्र जैनियों के पास और भेजा गया कि :-

॥ ओ३म् ॥

श्रीयुत लाला मंजूलाल, प्यारेलाल, फूलचन्दजी जैनधर्मावलम्बियों को विदित हो कि हमारा आपका शास्त्रार्थ इसी समय आरम्भ होजावे, इसमें क्षणभर भी विलम्ब नहीं होना चाहिये। क्योंकि हमारे महाशय लोग बड़े २ कार्य को छोड़कर बहुत दूर से केवल इसी कार्य के लिये आये हैं। यदि आप कहें कि हमारे मेले में हानि होती है और समय थोड़ा है, तो हमको पहिले ही विज्ञापन क्यों नहीं दिया कि हम मेले के दिनों में शास्त्रार्थ न करेंगे। यदि आपको किसी विषय में प्रश्न करना हो तो सभा में ही आकर कीजिये। यदि आप आज दश बजे से शास्त्रार्थ न करेंगे तो आपका पराजय समझा जावेगा। हम लोग अधिक प्रतीक्षा न करेंगे। इस पत्रका उत्तर तत्काल न देने से भी पूर्वोक्त व्यवस्था सिद्ध होगी।

सोमवार,
१६-१-८८ ई०

आपका कृपाकांक्षी—
गङ्गाराम वर्म्मा,
मन्त्री, आर्यसमाज, फ़ीरोज़ाबाद.

विशेष :—इस पत्र का भी कुछ उत्तर नहीं दिया और न पत्र लिया। ता० १६ से पत्र लेना भी बन्द कर दिया। तब ता० १८ के संस्कृत के ५ वें पत्र का उत्तर संस्कृत में लिख कर भेजा गया, सो भी नहीं लिया। पीछे समाज के दो चार आदमी सज्जन लोग लेगये. तब भी सेठजी ने पत्र न लिया। तब यह कहा गया कि आप पत्र नहीं लेते तो यह लिखा दीजिये कि हम पत्र नहीं लेते। सो यह भी नहीं लिखा। तब

आर्य लोगों ने शहर के दो चार लोगों को (जो आर्यसमाज में वा जैन मत में नहीं थे) कहा कि आप इस पत्र को सेठजी के समीप ले जाइये। वे लोग ले गये, तब भी पत्र नहीं लिया, परन्तु आर्य लोगों ने उनको साक्षी कर लिया। वह आर्य्यों का भेजा छठा पत्र यह था कि :—

## जैनियों के पांचवें पत्र के उत्तर में आर्य्यों का छठा पत्रः—

पूर्वप्रहितभावत्कपत्रे केवलं प्रमाणस्वरूपभेदविषयाणां प्रश्नो जातः। इतश्च ते प्रदर्शिताः। अधुना प्रतिभाति चैतद्यद्भावत्कैस्तेषां लक्षणानभिज्ञैर्भूयते। अतश्च तानि प्रकारान्तरेण देवानां प्रियावगमाय पुनः प्रतिपाद्यन्ते। प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानीति संख्या चतुष्टयविशिष्टं तार्किकसंमतं प्रमाणस्वरूपम्। वैशेषिकराद्धान्ते प्रत्यक्षं चानुमानं चेति प्रमाणद्वयम्। साङ्ख्ययोगयोश्च सिद्धान्ते प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानीति प्रमाणत्रयम्। पूर्वमीमांसकमतानुसारिणस्तु प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावा अष्टौ प्रमाणानि मन्यन्ते। उत्तरमीमांसकास्तु व्यवहारदशायां ह्यष्टौ प्रमाणान्युररीकुर्वन्ति। लक्षणानि च प्रत्यक्षानुमानिक्यौपमानिकीशाब्दीप्रमाणां करणं तत्तत्प्रमाणम्। यथा च प्रात्यक्षप्रमायाः करणं प्रत्यक्षं प्रमाणमित्यादिधेपे लिमम्। अनिर्दिष्टप्रवक्तृकं पारम्पर्यक्रमागतज्ञानकरणमैतिह्यम्। अर्थादापत्तिरर्थापत्तिः। यत्राभिधीयमानेऽर्थे योऽन्योऽर्थः प्रसज्यते साऽर्थापत्तिः।

सम्भवो नामाविनाभावितोऽर्थस्य सत्ताग्रहणादन्यस्य सत्ताग्रहणम्। अभावविरोध्यभूतं भूतस्येति। प्रदर्शितप्रमाणस्वरूपसंख्यालक्षणेषु सत्यां विप्रतिपत्तौ अर्द्धघटिकापरिमितसमयेन सप्रमाणं प्रदर्शनीया। तुलामन्तरेणेत्यारभ्य कथनीयेत्यन्तं पूर्वापरविरोधादनेकपराभूतिविशिष्टत्वात् सर्वथोपेक्ष्यः श्लिकुलेख इत्यलमतिपल्लवितेन।

ह० भीमसेनशर्मणः ह० देवदत्तशर्मणः

भाषानुवादः—आप के पहिले पत्र में प्रमाण के स्वरूप, भेद और विषय का प्रश्न था, इससे स्वरूपादि विषयों का उत्तर दिया गया। अब जान पड़ता है कि आप उन के लक्षणज्ञान से सर्वथा शून्य हैं, इसलिये वे प्रमाणस्वरूपादि प्रकारान्तर से तुम को बोध होने के लिये दिखाये जाते हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ये चार प्रमाण नैयायिक सम्मत हैं। वैशेषिक शास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान दो प्रमाण माने हैं। साङ्ख्य और योगशास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम तीन प्रमाण माने हैं। पूर्व मीमांसा में चार न्याय वाले, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव आठ प्रमाण माने हैं। उत्तर मीमांसा में भी व्यवहार दशा में उक्त आठ प्रमाण हैं। प्रमाणों के लक्षण प्रत्यक्षादि बुद्धियों का तत्तद्विषय में यथावत् होना प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं, इत्यादि प्रत्येक के लक्षण भी संस्कृत में लिखे हैं। यदि इन लिखित प्रमाण के स्वरूपादि में कुछ सन्देह रहे तो प्रमाणसहित आध घड़ी में उत्तर दीजिये। आगे जो तुम्हारे पञ्चम पत्र में "तुलामन्तरेण०" इत्यादि लेख है वह पूर्वापर विरुद्ध होने से अनेक प्रकार से तुम्हारा पराजय प्रकट करता है। इसलिये उपेक्षणीय है। इति शम्॥

विशेष :—यह पत्र न लिया और जैनियों के ओर से प्रबन्धकर्त्ताओं ने सभापति ज्वालाप्रसादजी से यह निश्चय किया कि अब शास्त्रार्थ करना बन्द करदिया जावे और जैनियों की ओर से यह न मालूम हो कि जैन लोग शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते, किन्तु उपद्रव के भय से प्रबन्धकर्त्ताओं ने शास्त्रार्थ होना बन्द कर दिया। इस प्रकार का एक पत्र जैनप्रबन्धकर्त्ताओं ने बनाकर सभापति के हस्ताक्षर करा लिये, पर आर्यप्रबन्धकर्त्ताओं के पास लाये तो इन्होंने हस्ताक्षर न किये और कहा कि जैनी लोग यदि शास्त्रार्थ करना चाहें तो जैनी और आर्य्यों की ओर से दश २ आदमी एक स्थान में दश २ हाथ पर बैठे रहें, बीच में पुलिस बैठी रहे, कोई किसी से बोले नहीं। वा कोई प्रतिष्ठित रईस प्रश्न करे उसका उत्तर अपनी २ विद्या वा मतानुसार दोनों पक्ष वाले उस रईस के प्रति देवें। इत्यादि अनेक प्रकार निकल सकते हैं, कि जिससे उपद्रव कदापि न होवे। परन्तु जैनों ने किसी की न सुनी। शास्त्रार्थ करने से सर्वथा हट गये।

इसके पश्चात् आर्य्य लोगों ने ता० २० को एक विज्ञापन शहर में दिया कि :—

॥ ओ३म् ॥

सर्व सज्जनों को विदित किया जाता है कि किसी कारण से न करने शास्त्रार्थ जैन भाइयों के हमारे विद्वान् पुरुष स्वस्थान को आज पधारेंगे। इससे हम फिर भी १ घंटे का अवकाश जैनमतावलम्बियों को देते हैं कि शङ्कानिवारण या शास्त्रार्थ करना चाहें तो आकर करें। बाद चले जाने विद्वानों के कहना उनका माननीय न होगा।

प्र० चैत्र शु० ८ भौम दिन,
२०-३-८८ ई०

गङ्गाराम वर्म्मा,
मन्त्री, आर्य्यसमाज, फ़ीरोज़ाबाद।

इसके पश्चात् सब लोग अपने २ नगरों को पधारे, जो बाहर से आये थे। इस प्रकार शास्त्रार्थ समाप्त हुआ।

॥ ओ३म् तत्सत् ॥

# जैनियों का प्रमाद

---

विदित हो कि जो शास्त्रार्थ वेदमतानुयायी और जैनमतावलम्बियों से नगर फ़ीरोज़ाबाद में हुआ था, उसका ठीक २ वृत्तान्त वोही महाशय कि जिनकी शास्त्रार्थ समय उपस्थिति हुई थी, जानते होंगे। और होने का कारण भी उन्हीं महाशयों पर प्रकट है कि जो यहां के रहने वाले हैं। ये दोनों बातें सत्य २ तभी सम्पूर्ण महाशयों पर विदित हो सकती हैं, जब पक्षपातरहित द्रष्टा पुरुष लिखें या कहें। शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद का सारांश जो मुंशी जगनकिशोर साहब ने छपवाया है। वह बहुत ही सही यानी सत्य है। जैसे मैंने अपनी अल्पबुद्धि से उसको सत्य समझा है ऐसे और भी महाशयों ने, जो पक्षपातरहित होंगे, समझा होगा, क्योंकि सत्य के कारण से। किन्तु जैनी महाशयों के शिर से अभी तक पक्षपात का भूत नहीं उतरा। कहीं तो ऐसे गपोड़े हांकने लगे कि हमसे आर्य हार गये और हमारे प्रश्न का कुछ उत्तर न दे सके। इससे भी अधिक प्रत्येक जैन मिथ्याभाषण करने लगे। इनकी प्रपंचमय वार्त्ताओं को सुन आर्य्य पुरुषों ने बहुत सहन किया, तो भी पराजयभूषण जैनी अपना पराजय छिद्र दबाने के लिये ठौर २ और भी अधिक मिथ्याभाषण करने लगे।

इस पर मन्त्री आगरा समाज ने प्रसिद्धिपत्र इस आशय का दिया कि यदि अब भी जैनी कुछ पुरुषार्थ रखते हों तो हम सर्वत्र जैनियों को सूचित करते हैं कि एक हफ़्ते के अन्दर हमसे फिर शास्त्रार्थ करें। सज्जनो!

ध्यान की जगह है, ग़ौर का मुकाम है, ख़याल की बात है, बुद्धिकी परीक्षा है, यदि ये ऐसे ही सभाजीत थे तो क्यों न शास्त्रार्थ किया ? इनकी शास्त्रज्ञता तो भले प्रकार ३ दिवस के शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद ही में प्रकट हो गई थी कि पराजयदल में ऐसा दवाव डाला कि पत्र और विज्ञापनों से भी शास्त्रार्थ करने को समर्थ न हुए, फिर ये किस वल से शास्त्रार्थ करते ? जैनमतावलम्बियों ने शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद जो छपवाया है उसको शास्त्रार्थद्रष्टा सज्जन लोग तो अवश्य २ ही सत् असत् को जान गए होंगे, किन्तु मैं अपनी अल्पबुद्ध्यनुसार सर्व के ज्ञातार्थ प्रमाद से जो उन्होंने विपर्य्यय छपवाया है, उसको प्रकट करता हूं। क्योंकि—

चौपाई—अति संघर्षण करे जो कोई, अनल प्रकट चन्दन ते होई ॥

---

# जैनियों का प्रमाद प्रमाद प्रमाद

१ प्रमाद :—श्री स्वामी भास्करानन्दजी के विषय में जो छपवाया है, यह उनका अति ही प्रमाद है। स्वामी भास्करानन्दजी यहां से तब पधारे, जब पं० पन्नालाल का पत्र इस आशय का आ गया कि मैं इस समय नहीं आ सकता, मेरे पैर में फोड़ा है। जब पन्नालाल ने फोड़े का मिस किया तब सेठ साहब ने चतुर्वेदी कमलापति साहब और उक्त स्वामीजी से यह कहा कि अब हमारा तुम्हारा शास्त्रार्थ मत विषय का मेले पर यानी ता० १५ मार्च सन् १८८८ ई० से अवश्य होगा। इसको सर्व सज्जन भले प्रकार जानते हैं कि जब पन्नालाल न आये तो भी स्वामी भास्करानन्दजी ने १७ फरवरी को अपने व्याख्यान में यह कहा कि यदि अब भी कोई प्रतिष्ठित जैनी यह कहे कि हम कल या ता० १८ फरवरी १८८८ ई० को पं० पन्नालाल को अवश्य २ बुला लेंगे तो मैं कदापि बांकीपुर के शास्त्रार्थ में नहीं जाऊंगा, चाहे मेरे पहुँचने के लिये वहां से तार आही गया है। इसको किसी जैनी ने कल के लिए यानी ता० १८ फरवरी को स्वीकृत नहीं किया और सेठ फूलचन्द साहब ने यही कहा कि मेले पर हमारे पण्डित लोग अवश्य आवेंगे। सज्जनो ! जब सेठ साहब ने किसी तरह से उस समय शास्त्रार्थ करना स्वीकृत न किया तब स्वामी भास्करानन्द सरस्वतीजी बांकीपुर को पधारे।

२ प्रमाद :—इनके पत्रों के उत्तर ठीक २ समय पर पहुँचते रहे, यह लिखना भी प्रमाद से असत्य है। बल्कि आर्य्य पुरुषों के दो पत्रों का तो जैनी महाशयों ने उत्तर भी नहीं दिया। और जैनियों ने किसी पत्र का उत्तर भी ठीक २ भले प्रकार नहीं दिया, कुछ का कुछ उत्तर देते रहे, यह बात भी सर्व सज्जनों को विदित है।

३ प्रमाद :— पण्डित भीमसेन शर्माजी और सेठ फूलचन्द साहब में जो नियम नियत हो गए थे, उनके सिवाय कुछ भी न्यूनाधिक नहीं हुए। यह लिखना जैनियों का सर्वथा व्यर्थ है। इनके लेख ही से इनका झूठ यानी मिथ्याभाषण सिद्ध होता है क्योंकि जब ये लिखते हैं कि न्यूनाधिक कर दिये थे। सज्जनो! ध्यान से देखिये कि यह इनकी कैसी प्रच्छपयुक्त वार्त्ता है, मानो जो न्यून हो गये थे उनको बढ़ा के और जो अधिक हो गए थे उनको दूर करके नियम क्यों न माने। और यह लिखा है कि पं० भीमसेन शर्मा अपने धर्म से कह देवें यही नियम ठहरे थे, यह लिखना और भी जो उक्त पं० जी के विषय में लिखा है बिलकुल असत्य ही है। इसको सम्पूर्ण द्रष्टा शास्त्रार्थ सज्जन लोग भले प्रकार जानते हैं।

भो विद्वज्जनो! इनका पूर्ण सिद्धान्त नियमों का न मानना ही इनके लेख से सिद्ध होता है। जब अनियम कार्य करना ही जैनी महाशयों को प्रिय लगता है, तो इनके बीच में शास्त्रज्ञता की गंध मेरी भी अल्पबुद्धि के अनुसार कोई विद्वान् नहीं कह सकता। देखो, नियम ही से सम्पूर्ण कार्य संसार के होते हैं, अनियम से कोई भी नहीं होता है, फिर अनियम कार्य कैसे हो सकता है? जब जैनी पं० शास्त्रार्थ के साधारण नियमों का होना मुख्य नहीं समझते तो शास्त्रार्थ करने की योग्यता इनमें कोई विद्वज्जन कब अनुमान कर सकता है? जब जैनियों की इच्छानुसार आर्य्य पुरुषों ने पक्ष और सरपक्ष स्थान स्वीकार किया फिर किस प्रकार से आर्य्यपुरुषों का हठ इच्छानुसार नियम नियत होने का सिद्ध हो सकता है।

४ प्रमाद :—मध्यस्थ के विषय में हम जैनियों का अत्यन्त ही प्रमाद प्रकट करते हैं, कि जिनमें शास्त्रार्थ और सभ्यता का व्यवहार किंचित् भी प्रकट नहीं जान पड़ता है। आधुनिक आर्य और जैनियों के विद्वानों से भिन्न मतावलम्बी मध्यस्थ हो. इस लेख से और भी अल्पज्ञता जैनी महाशयों की प्रकट होती है, कि शास्त्रार्थ कै प्रकार से होता है :और उसके

विशेष २ नियम सर्वोत्तम क्या हैं । पं० भीमसेनजी शर्मा ने यह कदापि नहीं कहा कि हमारे सर्व विरोधी हैं और सत् असत् का निर्णय करनेवाला कोई नहीं है । ऐसा अनर्थरूप लेख लिखना जैनी महाशयों की ही योग्यता है । क्या आज आर्य, जैन, मुसलमान, ईसाइयों के अनेक सम्प्रदाय हैं, इनमें एक महाशय से पूछा जाय या सर्व से पूछ के जो सिद्धान्त निश्चय किया जाय, तो कौन श्रेष्ठ होगा ? देखो, श्रीमती महारानी विक्टोरिया आज कमेटी यानी बहुसम्मति पर ही सर्वकार्य करती हैं । ऐसे ही पं० भीमसेन शर्मा का यह कथन था कि हमारे तुम्हारे लेखों को देखकर सर्व जगत् और सर्व विद्वान् जयाजय जान सकते हैं, ऐसे मध्यस्थ की कुछ इस शास्त्रार्थ में आवश्यकता नहीं है । ऐसे मध्यस्थ की आवश्यकता जैनी महाशय समझते हैं तो मेरी अल्पबुद्धि के अनुसार शास्त्रार्थ करना वृथा था । उसी मध्यस्थ से ही पूछ लिया जाता कि किनका सिद्धान्त ठीक और मत प्राचीन है ।

विद्याहीन जैनियों का अपने दुराग्रह और अपना कपोलकल्पित जाल कटने के भय से यही आशय इनके लेख से सिद्ध होता है कि शास्त्रार्थ न हो । जैनियों की मदता देखिये, कि ये आधुनिक दयानन्दमतावलम्बी लिखना, क्या इनको लज्जा नहीं आती है । यदि ऐसे ही पण्डित थे तो इन शब्दों को सभा में क्यों नहीं सिद्ध किया ? जब पण्डित भीमसेनजी शर्मा ने यह कहा था कि अगर तुम वेद को कपोलकल्पित आधुनिक आर्य्य और दयानन्दमतीय सिद्ध कर दो, तो हमारा तुम्हारा इस पर शास्त्रार्थ सही । इस कहने पर इनके मुख बन्द हो गए, कुछ उत्तर न दे सके । प्रियवरो ! इन जैनी पण्डितों को सिवाय मिथ्या प्रलाप के कुछ विशेष नहीं आता । सज्जनो ! शास्त्रार्थ दो प्रकार से होता है, एक तो मुख द्वारा, दूसरा लेख द्वारा । लिखित शास्त्रार्थ के जयाजय के ज्ञाता सर्व विद्वान् और सर्व जगत् होता है और मुखद्वारा के शास्त्रार्थ के द्रष्टा वे ही लोग होते हैं जो तत्काल उपस्थित हों । मध्यस्थ प्रबन्धकर्त्ताओं का होना अवश्य

चाहिए, क्योंकि जिससे शास्त्रार्थ समय कोई पक्ष नियमविरुद्ध प्रतिकूल कार्य न करें।

५ प्रमाद :—सज्जन पुरुषो ! इनका, धर्म से ज्यों का त्यों इस पुस्तक के लिखने में प्रमाद और मिथ्याभाषण प्रकट करता हूं। एक लघु बात यह है कि पं० पन्नालाल ने शास्त्रार्थ के पत्रों में अपना नाम अनुस्वार लगाकर कई पत्रों पर लिखा था, इसको सर्व सज्जन शास्त्रार्थद्रष्टा भले प्रकार जानते हैं। यदि किसी महाशय को प्रतीत न हो तो मैं पण्डित पन्नालाल के लेखों को दृष्टिगोचर करा सकता हूं। फिर ज्यों के त्यों धर्म-पूर्वक लेख कोई भी जैनी और जैन पण्डित सिद्ध कर सकता है। क्या मिथ्याभाषण को ही जैनी पण्डितों ने धर्म समझ लिया है ? इनका इस विषय में सम्पूर्ण लेख मिथ्याभाषण और पक्षपात की अनेक विद्याओं से अभिग्रस्त है।

६ प्रमाद :—जैनी पण्डितों को व्याकरण का पूर्णबोध न होने से उन्होंने अपने पत्रों में विशेष अशुद्धियां कीं और आर्य पण्डितों ने अपने प्रत्येक पत्र में इनकी अशुद्धियों की गणना प्रकट की, और सभा में पं० भीमसेनजी शर्मा ने यह भी कहा कि जैनी पण्डित यह कहैं कि ये अशुद्धियां हैं या पीछे शुद्धि बना लें तो इसी समय हम अशुद्धियों को जैनी पण्डितों के सम्मुख व्याकरणशास्त्र से सिद्ध कर सकते हैं। इस पर व्याकरणशून्य जैनी पण्डितों ने कुछ उत्तर न दिया। और शास्त्रार्थ जो छपवाया है, उसमें लिखते हैं कि आर्यों के पत्रों में भी अधिक अशुद्धियां हैं, यह लिखना कैसा अज्ञानता से निमूंल है। जैनियों के सम्पूर्ण पत्रों को देखकर सर्व को इनका झूठ और भी अधिक प्रतीत होगा, कि जैनी महाशयों ने पत्रों में तो कहीं अशुद्धियों की चर्चा भी नहीं लिखी और न इनके लेख से जो पत्रों में है यह सिद्ध हो कि कोई अशुद्धि है, फिर अशुद्धियों के विषय में लिखना सर्वथा व्यर्थ ही है।

जैनी महाशयों के लेख से यह बात सर्व सज्जनों को विदित हो जायगी कि अपनी अशुद्धियों को बनालेना और आर्य्यों के पत्रों में मिथ्या अशुद्धियां प्रकट करना, इस एक ही लघु बात से सिद्ध है जो मैं पं० पन्नालाल साहब के हस्ताक्षरों के विषय में पूर्व लिख चुका हूं। और छठा पत्र तो जैनी महाशयों ने अपने अत्यन्त प्रमाद की प्रबलता से मन माना लिख दिया है। सभा में तो इस पत्र को नहीं दिया और न आर्यसमाज में भी किसी के हस्तगत होके भेजा। यह बात इनकी मिथ्या प्रपञ्च की नहीं है ? जब यह नियम था कि एक २ पत्र दोनों पक्षवाले एक दूसरे को देदें, फिर छठा पत्र किस प्रकार से जैनियों का अधिक आना कोई विद्वान् कब अनुमान प्रमाण कर सकता है ?

प्रमाद ७ :—मैं अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार जैनियों के प्रत्येक विषय के लेख का स्थूल बातों में ही प्रमाद प्रकट करता हूं। जब इनके लेख से यह सिद्ध है कि हमारे और इन के परस्पर यह बात ठहरी थी कि संस्कृत के लेखानुसार भाषानुवाद करके सभा को सुना दिया करेंगे। सज्जनो ! ध्यान कीजिए इन लेखों के भाषानुवाद को कि यह संस्कृत का ही अनुवाद है ? उस पर भी यह अधिकता कि प्रमाद से परामर्श का पीछा तो पांच २ या छः २ पृष्ठ तक न छोड़ा। कहीं की ईंट कहीं के रोड़े का उदाहरण पूरा दरसाने लगे और अपने लेखों में विरोधाविरोध का भी ध्यान न रहा। सज्जनो ! इन के संस्कृत लेखों पर अच्छे प्रकार ध्यान देना चाहिये कि परामर्श 'सत्यार्थप्रकाश' और 'सर्वदर्शनसंग्रहादि' के पृष्ठ और पङ्क्तियों को लिखना इनके पत्रों के कौन से शब्द के अर्थ से प्रकट होता है ? यदि यही भाषानुवाद संस्कृत का हो तो अपने सम्पूर्ण ग्रन्थ और सप्तभङ्गी न्याय का जैनियों ने पूरा उल्था क्यों न लिख दिया ?

प्रियवर जैनियो ! तुम्हारे इन झूठमूठ के लड्डुओं के खाने से क्षुधा न दूर होगी। कहीं सत् के संमुख असत् और आधुनिक जो जैनमत है वह ठहर सकता है ? शंकराचार्यादि आचार्यों की सहस्रों फटकारों के लजाये

हुए जैन यानी बौधमतावलम्बी हठ और दुराग्रह को अभी तक नहीं छोड़ते। पक्षपात की पगड़ी को सिर पर और खींच २ के बांधते ही जाते हैं। यह आधुनिक मत तुम्हारा पीछा तभी छोड़ेगा जब सत् सनातन वेद धर्म का ग्रहण कर, पक्षपात की पगड़ी को खूंटी पर रख, सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् की शरण लोगे। तभी तुम सच्चे तत्वज्ञानी होगे। प्रियवर! इस आधुनिक जैनमत के असत्य ज्ञान को कल्याणकारी समझ क्यों अपना जीवन व्यर्थ गमाते हो ?

८ प्रमाद :—जैनियों का पं० ठाकुरप्रसादजी के विषय में लिखना अति ही असत्य यानी मिथ्याभाषण है। ऐसे असत्य लेखों के लिखने में जैन यानी बौद्धमतावलम्बियों को लज्जा भी नहीं आती। यह न ध्यान दिया कि हमारे मिथ्या लेखों को शास्त्रार्थद्रष्टा लोग देखकर कितना पश्चात्ताप करेंगे और हमको झूठे का दादा ठहरावेंगे। जो पुरुष एक बात झूठ बोलता है और उसके छिपाने के लिए १०० बात झूठ यानी असत्य भाषण करता है परन्तु असत्य के कारण से अन्त में असत्य ही रहता है। इसको अच्छी तरह शास्त्रार्थद्रष्टा लोग जानते हैं कि इन बातों में से एक भी बात शास्त्रार्थ के समय में जैनी पण्डितों ने नहीं की, कि यदि जैनी पण्डित यह कहें कि पं० ठाकुरप्रसाद आर्य नहीं है।

इस बात को सब सज्जन पुरुष जानते हैं कि पं० ठाकुरप्रसादजी ने अपने व्याख्यानों में यह कहा था कि जो आर्य न होगा, वह तो गैर आर्य होगा। मैं सोने के पत्र पर रजिस्टरी करा सकता हूं कि मैं आर्य हूं। सज्जनो! देखो यदि आर्य न होते तो आर्यसिद्धान्त के सभासद् क्यों होते ? बड़े पश्चात्ताप का विषय है कि जब समान संख्या दोनों पक्ष के पण्डितों की है, तो भी पं० ठाकुरप्रसादजी से क्यों न शास्त्रार्थ किया ? जब समान समय तक दोनों पक्षों को लिखने और कहने का अधिकार है फिर जैनी महाशयों को क्या भय था ? यह पं० ठाकुरप्रसादजी का कथन इस बात पर अपने व्याख्यानों में सर्व के ज्ञातार्थ हुआ। जब शास्त्रार्थ करके जैनी

पण्डित पेच में पहुँचे, तब बहुत पुरुषों ने यह कहा कि तुम्हारा बड़ा भारी अपवाद इस बात से हुआ, जो तुम ने पं० ठाकुरप्रसाद से शास्त्रार्थ करना स्वीकृत नहीं किया। तब जैन पण्डितों ने उन पुरुषों को यह उत्तर दिया कि पं० ठाकुरप्रसाद आर्य नहीं है, इससे हमने उनसे शास्त्रार्थ नहीं किया। उन पुरुषों ने आकर समाज में कहा।

जैनियों का सम्पूर्ण लेख इस विषय का अनेक मिथ्याभाषण की व्याधियों से अभिग्रस्त है। और जैन यानी बौद्धमतावलम्बियों ने असत्य भाषण ही अपना धर्म समझ रक्खा है। इनके धर्मग्रन्थों का भी यही आशय है कि जैसे कोई वस्तु है और नहीं है और कह भी नहीं सकते कि है या नहीं। ऐसे ही असत्य ग्रन्थों के संस्कार प्रबल होने से जैनी महाशयों को मिथ्याभाषण और हठ करने का असाध्य रोग ही होगया है। इनके ग्रन्थों में ऐसा असत्य भाषण लिखा है कि विद्वानों को अत्यन्त ही पश्चात्ताप इनके विद्याहीन आचार्यों पर आता है कि कोई परिमाण किसी वस्तु का अनुमान करके नहीं लिखा, जो मन में आया अप्रमाण लिख मारा। जैसे ४८ कोस का जूआं और ८ कोस का बिच्छू, १६ कोस का कलसा, ४० अक्षरों में एक पुरुष का आयु जो सहस्रों वर्षों का एक वर्ष, ऐसे ही अनेक मिथ्याभाषण इनके ग्रन्थों में हैं कि जिनको देखकर बुद्धिमानों को अति ही ग्लानि इस आधुनिक मत से होती है।

९ प्रमाद :—जैनियों ने जो चतुर्वेदी कमलापतिजी के विषय में लिखा है, वह सर्वप्रकार असत्य ही है। इसको समस्त शास्त्रार्थद्रष्टा पुरुष अच्छे प्रकार जानते हैं कि सभापतिजी का कदापि यह कहना नहीं था कि हमारा जयपराजय पं० ठाकुरप्रसादजी ही पर है। पं० ठाकुरप्रसादजी के व्याख्यानार्थ कहा था कि पांच मिनट शास्त्रार्थ समय में ही से चाहे आर्य पण्डितों के ही समय में से लेकर दिया जाय क्योंकि सम्पूर्ण शास्त्रार्थद्रष्टा पुरुषों की आकांक्षा उक्त पं० जी के व्याख्यान सुनने की है। इसको सुनकर पराजयमूर्त्ति जैनी बहुत घबराये, क्योंकि अन्तिम समय ३० मिनट

आर्य पण्डितों ही का था कि जिसमें इनकी सारी पोल इन्हीं के ग्रन्थों से सुनाई थीं, कि जिससे बहुत लज्जित हुए और यों कहकर कि हमारी तोहीन होती है, सभा से भाग गये। फिर पत्र और विज्ञापनों के देने से भी शास्त्रार्थ करने को उपस्थित नहीं हुए। सज्जनो! इसमें किसका पराजय विदित होता है?

१० प्रश्नाद्:—महाशयो! जैनी पण्डितों के प्रमाद की प्रबलता और मिथ्याभाषण का मकरजाल देखियेगा, कि पं० छेदालाल के लेख से विदित है कि मैंने पं० भीमसेन से यह कहा कि यह श्लोक हस्ताक्षर करके हमको दे दो क्योंकि इससे हमारे मत पर मिथ्या आक्षेप किया है। बड़े पश्चाताप का समय है कि आज दीर्घ यानी बहुत समय सत्यार्थप्रकाश को बने होगया है, किसी पण्डित जैनी ने मिथ्या आक्षेप का स्वामीजी महाराज पर दावा न किया। क्या पण्डित छेदालाल साहब उत्तरायण और दक्षिणायन ध्रुव की यात्रा को चले गये थे, जो अब गाढ़निद्रा से जगे और एक श्लोक पर नाक उठाकर देखने और कहने लगे।

प्यारे जैनियो! तुम्हारे आधुनिक मत का तो खण्डन श्री १०८ स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी ने अपने सत्यार्थप्रकाश के १२ वें समुल्लास में खूब प्रकट कर दिखाया। यदि ये पोलें जो उक्त समुल्लास में लिखी हैं, सत्य नहीं हैं, तो दावा तोहीन का क्यों न किया? क्या सर्वत्र जैनियों को मोतियाविन्द का रोग हो गया था कि जिससे आजतक न सूझा और बेठिकाने की बेसुरी दो चार बातों को कहकर इन भोले भाले जैनी महाशयों को क्यों ठगते हो? और अपने को पण्डितों की गणना में कहते हो? क्यों इस पण्डित शब्द को भी अपने नाम में लगाकर लज्जित करते हो? अजी लालाजी! आप अपने यथा नाम तथा गुण ही पर संतोष करो। दुराग्रह और मिथ्याभाषण के व्यवहार को छोड़ो। सदैव सत्यसनातन बातों को ग्रहण करो, कि जिससे व्यवहार और परमार्थ सिद्ध होना चरित्र कहाता है। अर्थात् जिन मत से भिन्न आचार्य सब सर्वथा अवद्य (निन्दनीय)

और उनके निन्दित मतों का त्यागना चारित्र कहता है और जिनोक्त तत्त्वों में रुचिवाली वाणी प्रियपथ्य और तथ्य कहाती है। यह वाणी चारित्र से संबन्ध रखती है। यही बात इनके सूत्रों से भी सिद्ध होती है कि जिन-भिन्न कुगुरु का सङ्ग करने से विषैले सर्प का काटना भला है।

क्या ही आश्चर्य है कि पं० छेदालालजी ने ऐसे २ सूत्रों को छिपाकर और पूर्वापर अपने मत का विचार न करके केवल वितण्डा किया है। स्वामीजी महाराज ने अवद्य शब्द का अर्थ सब प्रकार निन्दनीय किया है। सो जैनमत को पूर्वापर देख के किया है। इससे बहुत ठीक है। यदि स्वामीजी अनवद्य पाठ समझते तो उसका अर्थ भी वैसा ही करते। जब पाठ अनवद्य लिखा और अर्थ अवद्य का किया तो निश्चय है कि यह भूल लेखक की वा छापे की है। क्योंकि इसी पुस्तक में ( यान्यनवद्यानि कर्माणि ) यहां अनवद्य का अर्थ अनिन्दनीय किया है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि चारित्र प्रकरण में अवद्य ही पाठ है। जैसे जैनियों की प्रियतथ्य वाणी के विषय में 'जैन देवगुरुतत्त्वज्ञान उपदेशक' में लिखा है कि :—

कर्त्ताऽस्ति नित्यो जगतः स चैकः स सर्वगः सन् स्ववशः स सत्यः।
इमाः कुहेयाः कुविडम्बनाः स्युर्मन्ता न तासामनुशासकस्त्वम्॥

इस जगत् का कर्त्ता नित्यव्यापक, अपने सामर्थ्य में आच्छादन करने वाला, वह सत्य है, यह कुविडम्बना ( नीचबुद्धि ) त्यागने योग्य है। उसका मानने वा कहने वाला तू ( जैनी ) नहीं है। अर्थात् नित्यव्यापक जगत्कर्त्ता ईश्वर को मानना जैनों का काम नहीं॥

जैन पण्डितों की द्वितीय शङ्का यह है कि स्वामी ( दयानन्द-सरस्वती ) जी ने जो सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि "लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्" जिससे लक्ष्य जाना जाय उसको लक्षण कहते हैं, जैसे आंख से

रूप जाना जाता है सो ठीक नहीं, क्योंकि लक्षण का स्वरूप नेत्र को नहीं कह सकते।

इसका उत्तर यह है कि नैयायिकी परिपाटी यह है कि:—"अव्याप्त्यतिव्याप्त्यसम्भवदोषाग्रस्तत्वे सति लक्ष्यस्वरूपबोधकत्वं लक्षणत्वम्।" जिसमें अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव दोष न हो, और लक्ष्य पदार्थ का स्वरूप जतानेवाला हो, उसको 'लक्षण' कहते हैं। यहां जैसे नेत्र से रूप का बोध होता है इसमें नेत्ररूप लक्षण में अव्याप्ति दोष इसलिये नहीं कि नेत्र रूप के साथ व्याप्त है, अतिव्याप्ति इसलिये नहीं कि नेत्र से रूप भिन्न लक्ष्यरूप का बोध नहीं होता। नेत्ररूप का ग्रहण असम्भव भी नहीं और लक्ष्यरूप का बोध नेत्र से होता है। इस कारण रूप का लक्षण नेत्र को कहना असङ्गत नहीं है। लक्षण के सामान्य स्वरूप में शब्द वाक्य सूत्र आदि लक्षण कहे जाते हैं। जैसे प्रमाण शब्द का व्याकरणानुसार यही अर्थ है कि जिससे प्रमेय को जानें, निश्चय करें, वैसे लक्ष धातु के दर्शन (ज्ञान) अर्थ से गन्धादि विषय ज्ञान के साधन होने से ज्ञानेन्द्रिय लक्षण हो सकते हैं, इसमें कोई बाधा नहीं।

इसको न समझ के लिखा है तीसरे दिन के शास्त्रार्थ में पं० छेदालाल जैनी ने सत्यार्थप्रकाश पर तीन शङ्का बलपूर्वक की थीं। यद्यपि दूसरे दिन के शास्त्रार्थ में आर्यों के पण्डितों ने कह दिया था श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वतीजी हमारे मत के प्रवर्त्तक नहीं हैं, किन्तु हमारा सनातन वैदिक मत है। स्वामीजी के लेख पर जो कोई आक्षेप होगा, वह वैदिक मत पर नहीं समझा जावेगा, किन्तु स्वामीजी भी एक आप्त सनातनधर्मोपदेशक थे, इसलिये हम लोग उनको वेदोक्त धर्मोपदेशक मानते हैं। तुम लोग आर्यों के मत पर जो शङ्का करना चाहो वेद पर करना; इस पर जैनियों ने कुछ न ध्यान दिया। और इस विचार से कि वेद पर कहने का कुछ सामर्थ्य नहीं तथा स्वामी दयानन्दजी के सत्यार्थप्रकाश का खण्डन करें, जिससे अन्य आर्य (हिन्दू) लोग भी आर्यसमाज से तथा सत्यार्थप्रकाशादि से

घृणा करेंगे और हमारी प्रशंसा करेंगे, तथा बहुत जैन लोग भी सत्यार्थ-प्रकाशादि से जैन मत के गपोड़े देख २ आर्यसमाजस्थ हो गये हैं, सो सत्यार्थप्रकाश का खण्डन करेंगे, तो जैनी लोग सत्यार्थप्रकाश को देखने से घृणा करेंगे और हमारी प्रशंसा होगी कि हमारे पण्डितों ने सत्यार्थप्रकाश का खण्डन कर दिया।

इन तीनों शङ्काओं का उत्तर भी उसी दिन की सभा में यथोचित दे दिया गया था। तथापि जैनियों ने अपनी शङ्का और बढ़ाकर छपवाई कि जितना तत्काल नहीं कहा था और हमारी ओर से जो २ कहा गया था सो कुछ नहीं छपाया, यह पक्षपात नहीं तो क्या है ? उचित तो यही था कि शास्त्रार्थ में जो लेखबद्ध विषय हुआ था, उतना ही शास्त्रार्थ के नाम से छपाते, और विशेष छपाना होता सो अलग पीछे से छपा देते। पर यह काम धर्मात्माओं का है, सब का नहीं।

अब सुनिये सत्यार्थप्रकाश सम्बन्धी तीन शङ्काओं में पहिली यह है कि—"पृष्ठ ४२९ प० ३ सर्वथानवद्ययोगानां" इसमें स्वामीजी ने अवद्य को अनवद्य लिखा है। इस पर पण्डित छेदालाल तथा अन्य जैनियों ने बड़ा कोलाहल मचाया है कि स्वामीजी ने अज्ञान से वा कपट से शङ्का कोटि से उठा के तौतातिती को सिद्धान्त कोटि में रख दिया है।

इस पर विचार यह है कि वास्तव में ( सर्वथावद्ययोगानां ) ऐसा ही पाठ ठीक है, क्योंकि वदितुमयोग्यमवद्यम्" ( अवद्यपण्य० ) इस सूत्र से पूर्वोक्त अर्थ सिद्ध होता है। जो कहने योग्य नहीं हो उसको अवद्य कहते हैं, तो उक्त श्लोक का अर्थ यह होगा कि (जो कहने योग्य न हो उसका त्याग चारित्र कहाता है वह अहिंसादि भेद से पांच प्रकार का है)। अब प्रश्न यह है कि अवद्य नाम अयोग्य का क्या अर्थ हुआ, तो जैनमत के सब पुस्तकों अर्थात् मुख्य सिद्धान्तों से यही निश्चित है कि जिन मत से भिन्न तत्वों का अनुसंधान करना और जिन मत से भिन्न आचार्य सब कुगुरु हैं उनका त्याग, यह विद्वान् का दोष नहीं है किन्तु समझने वाले का

दोष है। पाठ का यह काम है कि जब उनकी समझ में न आवे तो दूसरे स्थलों में देखते हैं। जैसे स्वामीजी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ६६ में ( लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः ) इसका अर्थ बहुत सरल किया कि जैसे 'गन्धवती पृथिवी'। जो गन्धवाली है, वह पृथिवी है, अर्थात् गन्ध पृथिवी का लक्षण है।

जैनियों का तृतीय उपालम्भ यह है कि तौतातितियों के पूर्वपक्ष को लेकर स्वामीजी ने जैनमत का खण्डन किया है, सो ठीक नहीं, क्योंकि वह जैनमत नहीं।

सर्वज्ञो वीतरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः,
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन्परमेश्वरः।
सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः,
दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिङ्गं यो वानुमापयेत्॥

इन दोनों वचनों को स्वामीजी ने जैनमत के वर्णन में लिखा है। इनमें से पहिला श्लोक छेदालाल जैन ने शास्त्रार्थ में पढ़ा था और कहा कि हम सर्वज्ञ ईश्वर को मानते हैं। और द्वितीय श्लोक तौतातिती नास्तिक-शिरोमणि का है। इसको छेदालाल ने अपना प्रतिपक्षी कहा है, सो यह ठीक नहीं, क्योंकि तौतातिती यद्यपि किसी अंश में अर्हन्तदेव का भी खण्डन करता है, इसीलिए माधवाचार्य्य ने सर्व दर्शनसंग्रहस्थ जैनमत में तौतातिती को पूर्वपक्ष में लिया है, परन्तु मुख्य कर तौतातिती वैदिकमता-नुयायों का प्रतिपक्षी है। अर्थात् नित्य सर्वज्ञ ईश्वर को वेदमतानुयायी लोग मानते हैं, उसी का ( न चागमविधिः कश्चिन्नित्यसर्वज्ञबोधकः ) इत्यादि वचनों से खण्डन किया है। जैनी लोग जिस अर्हन्देव वा आदिदेव को सर्वज्ञ मानते हैं, उसको वे नित्य नहीं कह सकते, क्योंकि उनका मुख्य सिद्धान्त यही है कि अनादिसिद्ध सनातन ईश्वर कोई नहीं, किन्तु अर्हन्देव वा आदिदेव जब
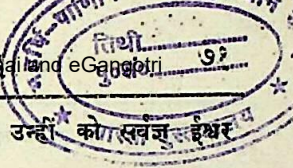
उत्पन्न हुए तब सम्यग्ज्ञानादि से सिद्ध हो गये। उन्हीं को सर्वज्ञ ईश्वर मानते हैं।

सो बीच में उत्पन्न होने वाला सर्वज्ञ भी नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी उत्पत्ति से पहिले अपने पिता पितामहादि का हाल नहीं जान सकता। और सिद्ध होने पहिले बाल्यावस्था का अपना ही चरित्र नहीं जान सकता। और सर्वज्ञ उसी को कह सकते हैं जो अतीतानागत वर्त्तमान सब समय में एकरस कूटस्थ व्याप्त हो के सब को जाने। सो ऐसा ईश्वर आर्य्यों का मन्तव्य है जैनादि का नहीं। लोगों को बहकाने के लिये जैसे ईसाई लोग ईश्वर का अनेक प्रकार वर्णन करते २ अन्त में ईसामसीह पर तान तोड़ते हैं, ऐसी ही कुछ चाल जैनियों की है। मानते तो एक बीच के उत्पन्न हुए शरीरधारी को हैं, उसके विशेषण सर्वज्ञादि हों यह असम्भव है, इसीलिये तौतातिती ने बीच में हुए भी किसी को ईश्वर नहीं माना। इससे वह नास्तिकशिरोमणि और जैनियों का बड़ा भ्राता है, अर्थात् अनादिसिद्ध सनातन सृष्टिकर्त्ता ईश्वर के न मानने में जैनी और तौतातिती दोनों एक ही हैं। इसी अभिप्राय से स्वामीजी ने दोनों को साथ ही लिखा है, इस से जैनों का आक्षेप ठीक नहीं है।

११ प्रमाद :—सज्जनो! इन जैनियों के मिथ्याभाषण की अधिकता देखियेगा कि जिसके लिखने से ये प्रमाद की गठरी ही जचते हैं। जैनी पण्डित लिखते हैं कि आर्यों की असमर्थता तो पहिले से ही शास्त्रार्थ विषय में थी। आज शास्त्रार्थ के प्रारम्भ समय से तो ज्ञात ही हो गई कि पं० देवदत्तजी की जगह पं० ठाकुरप्रसाद शास्त्रार्थ करेंगे। न्यायशील सज्जनो! इसको क्या असमर्थता का कारण कोई विद्वान् अनुमान प्रमाण से समझ सकता है। देखिये जब कोई पुरुष किसी विशेष कारण या रोगादि या समानसंख्या की गणना से किसी कार्य को न करे, तो क्या असमर्थ समझा जायगा? कदापि नहीं। खयाल कीजिये, जब समान संख्या दोनों पक्ष के पण्डितों की है और समान ही समय तक उभयपक्ष को कहने का

अधिकार है, फिर इससे तो असमर्थता आर्यों की कोई न्यायशील नहीं कह सकता।

यदि जैनियों की असमर्थता नहीं थी तो आर्यों के प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं दिया ? और मतविषयक शास्त्रार्थ क्यों न किया ? इस से जैनी महाशयो ! तुम्हारा पराजय तो सर्वजगत् तथा सर्व विद्वानों को तुम्हारे लेख ही से विदित हो गया कि न तो साधारण नियम जो शास्त्रार्थ समय अवश्य माननीय हैं, उनको और न मत विषयक शास्त्रार्थ करना। अब तुम्हारे इन असंगत लेखों को कोई विद्वान् प्रमाण न करेगा।

१२ प्रमाद :—शास्त्रार्थ बन्द होने में जैनियों की असमर्थता ही प्रकट होती है। यदि ये असमर्थ न होते तो क्या पत्र और विज्ञापनों से शास्त्रार्थ न करते ? और उपद्रव का मिस करके शास्त्रार्थ बन्द करना यह जैनियों की कातरता नहीं है ? यह इनके लेख ही से विदित है, कि धन्य है ऐसे न्यायमार्गी सभापति को कि जिन्होंने दोनों पक्ष को समदृष्टि से देखा और न्याय मार्ग पर आरूढ़ होकर न्याय किया। जब सर्वोत्तम न्यायकर्त्ता श्रीमान् चतुर्वेदी ज्वालाप्रसादजी और प्रबन्धकर्त्ताओं को कहा और प्रबन्ध की उत्तमता यहां तक लिखी कि नियत प्रबन्ध से इधर उधर न चलने दिया। बड़े पश्चात्ताप का समय है इन जैनी महाशयों की बुद्धि पर, कि ऐसे न्यायशील प्रबन्धकर्त्ताओं के न्याय में भी उपद्रव होने का दोष आरोपण करने लगे। तो जो प्रबन्धकर्त्ता अपने न्याय से किसी पक्ष को इधर उधर नहीं चलने देते थे, फिर ऐसे न्यायशील प्रबन्धकर्त्ताओं के संमुख अन्याय और उपद्रव का होना किस प्रकार से सम्भावित है। इससे जैनियों की पूर्ण असमर्थता सिद्ध होती है।

और प्रमाद की प्रबलता देखियेगा कि श्रीयुत चतुर्वेदी राधामोहनादि और भी प्रतिष्ठित रईसों ने उपद्रव होता जान शास्त्रार्थ होना बन्द किया। इन असंगत लेखों के लिखने में जैनी महाशयों को लज्जा नहीं आती। जब यह ठीक यानी सत्य ही था तो सर्व प्रकार रईसों के हस्ताक्षर क्यों न करा

# आर्यसमाज के नियम

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थविद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदिमूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें॥